* ॐ *

वन्दे जिनेश्वरम्

ले कः-

श्रीमान् शङ्कर मुनिजी महाराज

मुख वस्त्रिका की प्राचीनता सिद्धि

विहारी लाल ... वोहरा

(उ. प्र.)

प्रकाशिकाः-

स्वर्गीय श्रीमान् लाला लेखराज जी की धर्म पत्नि श्रीमती अनार बाई लोहामंडी आगरा

प्रथमावृत्ति ५००	अमूल्य	वीराब्द २४५७ विक्रमाब्द १९८८

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.

। समर्पण ।

भव- वारिधि के अर्णव-पोत !

जिन आप के पवित्रत्तम पाद-पद्मों के अनुपम और अप्रतिम प्रसाद से, मुझे सम्यक् ज्ञान-दर्शन और चारित्र का अपूर्व लाभ सम्प्राप्त हुआ, जिन एक मात्र आपही के अमल कोमल चरणों के पुण्य-प्रताप से, मेरे मलीन और दुर्बल मन के अपूर्व मानसिक बल की प्राप्ति हुई, जिन आप ही की एक मात्र वाणी की सचौटी के दिव्य प्रकाश से, मेरे ही तल का अज्ञानान्धकार दूर हुआ, जिन के कर्तव्यों का पादानुसरण कर मुझे पूज्यमत जिन शासन की सत्सेवा करने का अवसर और अदम्य उत्साह जगत में मिला, जिनने मुझे भूत-दया और परोपकार का सुन्दर पाठ पढ़ा कर, मेरे जीवन और जन्म में एक अद्भुत जागृति लादी, जिनने समय समय पर शास्त्रों के अनुपमेय उपदेशों से, मेरे चित्त की चंचल वृत्ति की एकबारगी काया पलट कर दी, जिन के कृपा-कटाक्ष से मेरे समस्त क्लेश पुंजों का प्रशमन हुआ, और जिन्हीं के आदर्श आज्ञानुवर्तन और शुभाशीर्वाद को अपने सिर-माथे रख में वर्षों से इसी एक काम के पीछे अपने पूरे बल उतरा हुआ हूं; उन्हीं शुद्धात्मा, परम पूज्यनीय; गुरु राज,जैन जगत-वल्लभ; जैन धर्म के सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री १००८ श्री " चौथमलजी " महाराज सा० के कान्त कमल चरणों में यह अकिंचन लेखक अपनी इस कृति को सादर एवं सप्रेम समर्पित करता है।

श्री गुरु, चरणों का अकिञ्चन सेवक,
शङ्कर मुनि ।

ॐ

लेखक के दो शब्द।

संसार में मनुष्य पद पद पर इस बात का अनुभव करता है, कि यहां बहुधा वेही बातें जन साधारण में सर्व-मान्य समझी जाती हैं, अकसर, यहां का प्रत्येक व्यक्ति उन्हीं बातों को मानने के लिए कायल होता है, जो बहु-जन समाज से स्वीकृत हो चुकी हैं। फिर, यदि उन्हें अंगीकार करनेवाला वह समाज विद्वान और विवेकशील होता है, तब तो उन स्वीकृत बातों की मान्यता पर उन की प्रमाणिकता, देश-काल की आवश्यकता, विज्ञान-मूलक उन की व्यापकता, उन की प्रमाण-सिद्ध प्रौढ़ता, तथा उन के तत्वानुसन्धान, आदि आदि का, और भी अधिक गाढ़ा रंग चढ़ जाता है। अर्थात् वे बातें तब और भी अधिक प्रामाणिक, देश और काल के लिए आवश्यक, विज्ञान से ओत-प्रोत प्रमाण-सिद्ध, और तत्त्वमय, जगत के जन-साधारण को जंच और सूझ पड़ती हैं। इस पर भी यदि उन बातों को सभी मत-मतान्तर के और सभी धर्मावलम्बी विद्वान और विवेकशील पुरुष, यदि एकस्वर से और एक ही साथ स्वीकार कर लेते हैं, तब तो किसी विशेष जन समाज की वे स्वीकृत बातें देश भर के घर घर और दूर दूर में आदरास्पद हो जाती हैं। फिर, समय भी सदा बदलता ही रहता है। उस के साथ साथ, उसकी बातें भी बदलती जाती हैं। जैसे कहा है।

है बदलता रहता समय, उस की सभी बातें नई।
कल काम में आती नहीं हैं, आजकी बातें कई॥ भारत-भारती

ऐसे विकराल काल के पैने पंजों और जबर्दस्त जबड़ों से निकल कर के भी, जो बातें वर्तमान काल, भूतकाल और वैसे ही भविष्यत् काल, सभी समयों में, और वह भी सभी प्रकार के जन समाज के द्वारा, एक सी समादृत होती रही हों, उन की मान्यता पर, फिर आज किसी समाज के अंग-विशेष का; उनकी सचाई के विषय में सन्देह दिखाना; उनकी प्राचीनता में नवीनता का आभास देखना; उनकी विज्ञानसनी व्यापकता में विस्मय का बीजारोपण करना. उनके तत्त्वानुसंधान में तर्क वितर्क करना उन के देश काल और पात्र की आवश्यकता में दलबन्दी बांध कर दुर्गुण और दोषों का दर्शन करना तथा उनकी प्रौढ़ता और प्रामाणिकता में प्रकारान्तर से तरह तरह के प्रपंच पैदा करना; आदि उस अंग विशेष का, स्वयमेव अपने ही द्वारा अपनी निरी मूर्खता, दय का कमीनापन, विचारों के ... देश काल और पात्रों

अनभिज्ञता; अपने में अपने शास्त्र ज्ञान की शून्यता;और इसी तरह निज
मद चार; कुत्सित कार्य आदि की मान्दता मे ऐकान्तिक मोह आदि को ज
जाहिर कर के दिखाना नहीं तो और क्या हो सकता है !

बस ठीक यही घटना बेचारी शास्त्रसम्मत मुख पत्तिका पर [जो जग
के प्रायः सभी शिक्षित और सभ्य समाज; धर्म; अवस्था; काल; और आश्र
के लब्ध प्रतिष्ठ पुरुषों; तथा उन के प्रामाणिक ग्रन्थों के द्वारा; केवल मुँह प
बांधना ही जैन साधुओं के लिए उचित और उपादेय ठहराई गई है । स
पर] पिताम्बरी जैन साधुओं के द्वारा आज के दिन घट रही है। इन पिताम्ब
दण्ड-धारी दण्डियों ने उस बेचारी को अपने वास्तविक स्थान अर्थात मुँह
ऐंचातानी के साथ; उस पर अपने दण्ड के बल हाथापाई कर के हाथों पर र
धर्माद धरवा है। इसी में ये आज के साधु कहलानेवाले महत् पुरुष इ
आधुनिक जमाने की अपनी आयुध चातुरी मान बैठे हैं । इसी को इन दण
धारियों ने अपने दण्ड-धारण की परम शोभा समझ रक्खी है । इसी अपने
कदाग्रह के वश हो; आज ये साधु नामा लोग अपने रंगीले पन का जग
को ना-रंगपन के रूप में दर्शन करा रहे हैं। अस्तु ।

प्यारे पाठको ! यह अकिंचन लेखक आपको इस पुस्तक में मुख वस्त्रि
की क्रमिक प्राचीनता की; यथा-साध्य सप्रमाण मालक दिखाने का प्रयत
करेगा । तब अन्त में जैनेतर धर्मावलम्बी सज्जनों के तथा समुद्र पार
सुदूर देशों के अन्य गण्य मान्य विद्वानों के भी कई पुष्ट और प्रामाणिक प्रमाण
से उस की वास्तविक उपयोगिता के साथ यह आप के सम्मुख रखने
अपने भरसक सत्साहस और सदुपाय करेगा । आशा है; विचारवान औ
विवेक-सम्पन्न पाठकगण पक्षपात हीन बुद्धि से उनको पढ़ने की कृपा करेंगे ।

अन्त में इस पुस्तक के इस विषय को इस ढाल में ढालने में इन्दौर
धर्म पिपासु एक अध्यापक भाई श्री रामकुमारजी मारवाड़ी ' विशारद
एवं ' साहित्यालङ्कार ' से मुझे विशेष सहायता मिली है, जिस के लि
पाठकों को उनके प्रति आभार प्रदर्शन करना चाहिए ।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!! ॐ

वीर, सं. २४५७ — श्री श्रमणोपासक जैन समाज का

विक्र. १९८७ — अकिंचन सेवक शङ्कर मुनि

मुखवस्त्रिका प्राचीनता सिद्धि

यह ग्रंथ कर्त्ता का फोटू श्री अर्हन्त प्रभु प्रदर्शित श्वेतांबर मुनियों के वेष विन्यास का सबूत दिखाने वाला, केवल परिचय के लिये दिया गया है.
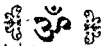
वन्दे-वीरम्

विराजते मुखाम्भोजे, साधूनां मुखवस्त्रिका।
रक्षिका सूक्ष्म जन्तूनां, दुरितच्छेद शक्तिका॥

व्याख्या-भो पाठका! सनातनीय श्वेताम्बरीय जैन यतीनां साधूनां मुखाम्भोजे वदन-कमले, मुखवस्त्रिका विराजते शोभते। कीदृशा, मुखवस्त्रिका? उक्तं च,-एगविसंगुलायाम, सोलसंगुल विच्छिण्णो चउकार संजुयाय मुहपोती एरिसा होइ॥ अर्थात् एक विंशत्यंगुला परिमितदीर्घा, षोडशांगुला परिमित विस्तीर्णा च चतुराकारसंयुक्ता, एतादृशा रूपा मुखवस्त्रिका दवरकेन सह मुखे बन्ध्यमाना विराजते-शोभते, पुनः कथं भूता मुख-वस्त्रिका? वायु दृष्ट्या ऽ दृष्ट-सूक्ष्म-जन्तूनां रक्षिका पालयित्री। पुनः कथं भूता? दुरितच्छेद शक्तिका, पाप-नाशने पटीयसी, आयुधरूपाऽस्ति॥

मुखवस्त्रिका की क्रमिक प्राचीनता

सिद्धि।

अकसर जैन पीताम्बर दण्डधारी साधु लोग तथा उनके अनुयायी यत्र—तत्र और यदा—कदा कहते रहते हैं, कि मुख-वस्त्रिका को मुख पर बांधनेवालों का जो मत चला है, वह तो केवल १५० वर्षों ही से चला है। पर पाठको! इस पुस्तक में हम क्रमशः बताने की चेष्टा करेंगे, कि उन का यह कथन जैसा असमंजस से भरा-पूरा है वैसा ही अनर्गल और असंगत भी है। यह मत वास्तव में न तो आधुनिक या अर्वाचीन है, और न माध्यमिक काल ही से इस का प्रचार जगती-तल में हुआ है। किन्तु, प्राचीन समय से यह इस संसार में विद्यमान रहा और आगे भी रहेगा। देखिये, इन्हीं लोगों के गुरु-वाक्यों से, नीचे के उद्धरण के द्वारा, यह सिद्ध किया जाता है कि ऊपर के १५० वर्षों के समय से भी पूर्व ये मुख-वस्त्रिका को मुख पर बांधनेवाले मुनि लोग इस मही में थेः—

गच्छ नायक लायक गुणे, जिन चन्द सूरि सूरिन्द।
आचारिज गच्छ अम्बरे, मानुं उदयौ रे जाणे अभिनवौ चंद॥
संवत सतरे अस्सीये, रया लूंण शर चोमास।
वाचक श्री पुन्यचन्दने, सुपसायेर किधो ए रास॥
रविवार सुधि द्वितीया दिने, रिति शरद बीजो मास।
शिष्य पुन्यशील के आग्रह, इम जंपेरे कवि पुन्य-विलास॥

उपर्युक्त उद्धरण के कर्ता नामांकित यतिजी ने 'मानतुंग

मानवती का रास ' बनाया है, उस की ४८ वीं ढाल के प्रथम दोहे में निम्न-लिखित कथन है—

दोहा—केर मणे केर अर्थ ले, के पांचे सूत्र सिद्धान्त ।
मुंहडे बांधी मुंहपत्ती, मोटा साधु महान्त ॥ १ ॥

उपरि-लिखित उद्धरण के निर्धारित समय से, जिसे आज (संवत् १९८७ विक्रमीय) तक २०७ वर्ष बीत चुके हैं । अर्थात् ऊपर का जो १२० वर्षों का इन का कथन है, वह भूठा ठहर चुका । आगे और पढ़िये ।

" श्री प्रकरण रत्नाकर " के तीसरे भाग में श्रीमद्यशोविजयजी कृत, वीर-स्तुति रूप " हुंडिनुं स्तवन " है । उसी की १८ वीं गाथा के भावार्थ में ५८१ पृष्ठ पर २६ वीं पंक्ति में यों लिखते हैं ।

" आहि यां··········कहे छे जे ' चैत्य ' शब्दे अमे जिन प्रतिमा नथी मानता । इत्यादि ।"

पुनः उसी ग्रन्थ के पृष्ठ ६१४ पर यों लिखा है । राग धनाश्री में ' कलश ' यथा ।

ईदलपुरमां रहिय चोमासें, धर्म ध्यान सुख पायाजी ।
संवत् सतरह तेत्रीसा वरसे, विजय दशमी मन भायाजी ॥

भावार्थ —"ईदलपुर अहमदावाद नु परे, त्यां चोमासुं रहीने धर्म ध्यान नुं घणुं सुख पाम्या, संवत् १७३३ में वर्षे विजय दशमी ते आसोज सुदि १० ने मन भाया के मनने विषे भाव्या"

[" इति श्री महोपाध्याय श्री यशोविजयजी विरचितं श्रीवीर जिन विचार स्तवनं सम्पूर्णम् । "]

सज्जनो ! इस उपरोक्त स्तुति के पढ़ जाने पर यह स्पष्टतया ज्ञात हो सकता है, कि संवत् १७३३ विक्रम के पूर्व भी मुख-वस्त्रिका को मुख पर बांधनेवाले लोग इस महि-मण्डल में

विराजमान थे।

जिस को आज संवत् १९८७ विक्रमीय तक २५४ वर्ष होते हैं। अब हम अपने पाठकों के सम्मुख इस से भी पूर्व के प्रमाणों को उद्धृत करेंगे।

श्रीयुत दण्डी 'वल्लभ विजय' ने अपनी 'गप्प-दीपिका समीर' के पृष्ठ १७ पर लिखा है, कि "स्थानक वासी जैनियों को निकले २३८ वर्ष हुए हैं।" फिर देखिये, पाठको, दण्डी जी की यह पुस्तक करीब संवत् १९३० विक्रमीय में लिखी गई है। इस हिसाब से २३८ वर्ष पूर्व, अर्थात् १६९२ विक्रमीय संवत् में स्थानक-वासियों के मत का निकलना निर्धारित हो रहा है। जिसे आज संवत् १९८७ विक्रमीय तक, २९५ वर्ष हो रहे हैं। अर्थात् यह समय भी १५० वर्षों से अधिक और परे का है। कृपया, और भी देखिये। इन्हीं दण्डधारी लोगों के गुरु जी की बनाई हुई "जैन भानु" नामक पुस्तक के पृष्ठ ३ पर लिखा है, कि "इन स्थानकवासी जैनियों के मत को निकले, २५० वर्ष हुए हैं।" इस संख्या में, पुस्तक के प्रकाशन से आज तक का समय और भी जोड़ देने पर, यह संख्या २५० वर्षों से बहुत अधिक होजाती है। यह पुस्तक संवत् १९६७ विक्रमीय में छपी हुई है। फिर वही दण्डी वल्लभ-विजय जी, अपनी "गप्प-दीपिका समीर" के पृष्ठ ४७ पर, दुबारा लिखते हैं, कि "इस.........मत की पट्टावलि विगत ४०० वर्षों तक की पायी जाती है।" इसमें, पुस्तक प्रकाशन से आज तक का ५७ वर्षों का समय और मिला देने पर, यह पट्टावलि ४५७ वर्षों की पुरानी हो जाती है। अस्तु! १५० वर्षों के कहने वालों का कथन तो, उन के गुरु-वाक्यों से ही, निरुपयोगी और असत्य सिद्ध होगया। अर्थात् श्रमणोपासक समाज, स्वयं उन्हीं के गुरु लोगों के वाक्यों के [illegible] अर्वाचीन नहीं,

प्राचीन प्रमाणित होगया ।

फिर अकसर संवेगी सम्प्रदाय के लोग, बेचारे भोले भाले श्रमणोपासक लोगों को यह कहते नज़र आते हैं, कि " मारवाड़ की कौमों का इतिहास " नामक पुस्तक के पृष्ठ २५४ पर लिखा हुआ है कि "संवत् १५६८ विक्रमीय में यहां जो नये २२ सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई, उन में से एक तुम्हारा भी सम्प्रदाय है ।" पर पाठकों ! वास्तव में बात उलटी है । उक्त संवत् तो दरअसल में उन्हीं के गुरुओं के सम्प्रदाय (अर्थात् संवेगी सम्प्रदाय) की उत्पत्ति का द्योतक है । अगर पाठकों को हमारे कथन में सचाई का आभास प्रतीत न होता हो तो वे सेंसस की रिपोर्ट को पढ़ने का कष्ट उठावें । यह रिपोर्ट, "मर्दुम शुमारी राज मारवाड़ सन् १८९१ ईसवी में मारवाड़ की कौमों का इतिहास" नाम से प्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ के पृष्ठ २५८ पर, संवेगी साधुओं के सम्प्रदाय की उत्पत्ति, नीचे के अनुसार वर्णन की गई है । "संवत् १५६८ विक्रमीय के करीब यह पन्थ चला है और पहचान के वास्ते अपने कपड़े भी उन्हों ने पीले कर लिये । इत्यादि ।"

इस उपर्युक्त कथन से साबित होता है, कि संवेगी साधुओं के सम्प्रदाय को संसार में प्रचलित हुए, आज दिन तक, अर्थात् संवत् १९८७ विक्रमीय तक, ४१९ वर्ष कुल हुए । विपरीत इस के श्रमणोपासक समाज तो मूर्ति-पूजक समाज से भी प्राचीन है । देखिये:—

" चारित्रमाला "—जिस में महान सिक्ख गुरुओं और गुरु श्री नानक देव का जीवन-चरित्र संक्षेप में कहा गया है—के पृष्ठ १२ पर उस के लेखक ने लिखा है, कि " संवत् १५६७ विक्रम में मों पर सुमती रायनारा जैन धर्मना साधुओं साथे प्रश्नोत्तर थया हता ।" जिस बात को आज संवत् १९८७ विक्र-

❀ चित्र परिचय के लिये ❀

गजसुखमाल मुनि के सिरपर सोमल ससुर मिट्टीकी पाल बांध कर जाज्वल्यमान अंगारे डाल रहा है।

प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.

मीय तक ४२० वर्ष हो जाते हैं। इस वर्ष-गणना से यह स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है, कि मूर्ति-पूजक समाज से, मुख पर मुँह पत्ति बांधने वाले श्वेताम्बर जैन साधुओं का समाज प्राचीनतर है।

ऊपर वर्णन की हुई मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट के पृष्ठ २५४ पर २२ सम्प्रदायों की उत्पत्ति पुनः १५४५ विक्रम-संवत् में बताई गई है। जिस को आज संवत् १९८७ विक्रमीय तक ४४२ वर्ष होते हैं। अर्थात् पाठक, उपर्युक्त कथन के अनुसार, संवेगी साधुओं के सम्प्रदाय को संवत् १५ ४५ विक्रम में भी निकलना मान लें, तो भी वह ऊपर के अन्यान्य प्रमाणों से, श्रमणोपासक समाज की उत्पत्ति काल से तो अर्वाचीन ही ठहरता है।

ऐसे और भी कई प्रमाण दिये जा सकते हैं। और, श्रमणोपासक समाज की मूर्त्ति-पूजक समाज से हर प्रकार प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है।

आगे, पाठक लोग "सुमति—निवेदन" नामक पुस्तक के प्रथम पृष्ठ के उद्धरण का भी जरा अवलोकन करें। वह यों है:—

"लोंका लेखक ने पनरे से इकतीसरी शाल में......... मत चलाया, इत्यादि।"

इस प्रमाण से भी श्रमणोपासक समाज को प्रचलित हुए आज (संवत् १९८७ विक्रमीय तक) ४५६ वर्ष हुए।

इसी तरह, खरतर गच्छ की जो हस्त-लिखित प्राचीन पट्टावलि प्राप्त होती है, उस में भी नीचे लिखे अनुसार प्रमाण उपलब्ध होता है। वह यों है:-

"अष्टाधिक पंच दश शत (१५०८) वर्षे जिन-प्रतिमोत्थापन पर लुंका व मतं प्रवृत्तम्। इत्यादि।"

इस प्रमाण से भी श्रमणोपासक समाज, आज संवत् १९८७ विक्रमीय से ४७१ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ, सिद्ध हो रहा है।

आगे और भी प्रमाणों का अवलोकन कीजिये।

उक्त गच्छ की पट्टावलि ही के २० वें पृष्ठ पर यों लिखा है कि—

" श्री जिन चन्द्र सूरयः जेशलमेरु नगरे सं० १५३० स्वर्ग प्राप्ताः। तद्वारके सं० १५०८ अहमदावादे लोंकाख्येन लेखकेन प्रतिमा उत्थापिता। ततः सं० १५०६ माघ सुदी त्रयोदश्यां जेशलमेरु वास्तव्य संघपति सोहनपाल कृत नन्दी महोत्सवेन श्री जिनचन्द्रसूरिभिः स्वहस्तेन पदस्थापना कृता पंच नदी सोम यक्षादि साधिका। "

इसी पट्टावलि के पृष्ठ २२ पर नीचे का प्रमाण भी लिखा देखा जाता है।

" श्री जिन माणिक्य सूरयः कियन्ति वर्षाणि जेशलमेरु दुर्गेऽवसन्। तदानुमुनयः सर्वेऽपि शिथिलाचाराः जाताः प्रतिमोत्थापन मत बहु विस्तृतं। ततो विकानेर वास्तव्य बच्छावत मन्त्रि संग्रामसिंहेन गच्छ-स्थिति रक्षार्थं श्री गुरव आहूता स्तदा भावतो विहित क्रियोद्धारैः श्री गुरुभिः प्रथमं देराउर नगरे श्रीजिनकुशल सूरियात्रां कृत्वा पाश्चात्य परिग्रहं त्यक्त्वा इमो विहारं करिष्ये इति। "

इन पूर्वोक्त लेखों से, ४७१ वर्ष पूर्व (आज से) भी मुख-वस्त्रिका को मुख पर बांधने वाले संसार में विद्यमान थे।

आगे कबीर साहब अपने " बीजक की तीसवीं रमैनी " में, पृष्ठ ११ पर यों कहते हैं, कि—

" अरु जैनी जो नास्तिक हैं, ते धर्म को मर्म नहीं जान्यो, काहे ते कि बांधे तो मुहे पट्टी रहै हैं, कि कहूं किरया न

घुसि जाय।"

पाठकों को यहां कबीर साहब का जन्म काल भी याद रखना चाहिये। वे ज्येष्ठ शुक्ल १५ संवत १४५५ विक्रमीय में, लहरताला ताल के किनारे बनारस में पैदा हुए थे। और उन के, संसार में एक धर्म-प्रचारक के नाते उतरने के समय को और जोड़ दिया जाय, जब कि उन्हों ने ऊपर के अपने विचार प्रगट किये हों, तब भी अधिक से अधिक उस समय विक्रमीय १५ वीं शताब्दि का अन्त रहा होगा। अस्तु। इस उपर्युक्त प्रमाण से भी श्रमणोपासक समाज का, आज से लगभग ५०० वर्षों के करीब का, पुराना होना पाया जाता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य कृत "भुवन भानु केवलि चरित्र" की जो हस्तलिखित प्राचीन प्रति हमें देखने को मिली है, उस में निम्न-लिखित प्रमाण पाया जाता है। यथाः--

"सिरि भुवन भानु केवलि चरित्तं।"

"सिरि मल धारि गच्छ मंडण सिरि हेमायरिय सूरिणा मोयण भव भावण पइणागस्स वित्तिमज्झे संसय भासा विरइयं भवइ। तउ अप्प सूय जीवाणं सुहावबोह-एट्ठाए धम्म घोस सूरि सरस्स अनुकमेण मए साधग वयणेण लोग भासाए बालावबोहं लिहियं भवइ तद् दट्ठूण सिव सुह दायग सिरि पूज्य पाद............इत्यादि। संवत् १६२२ वर्षे भिति कार्तिक वदि अष्टमी तिथौ लिखितं पण्डित् अभयचन्द्रेण श्री बीकानेर मध्ये।"

पृष्ठ ३६ पर यही पाठ निम्न-लिखित प्रकार से लिखा हुआ है।

"रोहिणी ददट्ठूण केणावि सावयेण हिय ठयाए अंजलिं कट्टु एवं वयासी, महाभाग! एक घड़ि धम्म ठाणे आगयाणं तु मणे विगहा करण जुत्तं बांधय शुद्ध वयह परं अण्णत्थ को कस्स क-

हि मिलइ । को कस्स गिहेण गच्छइ । तउ पच्छय पिय मेलावउ भवइ । आउ सोऽपि अप्पाणो मुह दुहे गिहेदामीं इच्छे असमाहिण कारयव्वा कम्मेण उवसमए सज्झायं परिहरिउण विगहं कुणइ साहुणी साधग साविया दोसप्पगासेई । तत्तेण जइ महासती सिक्खइ । महाभाग ! रोहिणी भणय कहे विगहं कुणइ सव्वं पढ़ियं विसरिस्सइ । इमेण इहलोए परलोए दुह दायेणं गि केवल कम्मबन्ध हुउण पर परिवायण अप्पा पूरेज्जा सव्व संपत्ति हेउं अमिय सरिसं सज्झायं कुणह । तउ पच्छा सा रोहिणी मुह मोड इत्ता भणइ । इच्छ महसती ए वि महव्वय धारिणीए विगहा विरंदा दिस्सई । अणावि कावि मुहं बंधिता चिट्ठई साव दिस्सइ अम्हेसं तासि मुंह कहा मो पर मंयासि थ माया फाऊण जाणामो जारिसं भवइ तारिसं पिऊणोऽपि फुंड कहा मो ।

पच्छा रुसउ तुसउ वा तओ महासती चिंतइ एस उव एस अउग्गा संजायर तउ पच्छा सा अणाहादिउया समाणी गुरु सगासे धम्म कहा समए वच्छेण मुह मच्छाद्यैवा:........... इत्यादि वचनात् ।"

यहां पाठकों को यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि श्री हेमचन्द्र सूरि का जन्म संवत् ११४५ विक्रमाब्द में हुआ था । उन्हों ने पांच ही वर्ष की अवस्था में दीक्षा-ग्रहण की थी। उसी समय वे श्री देवचन्द्र सूरि के शिष्य बने थे । उन्हों ने सब को सुगमता-पूर्वक बोध होने के लिए, प्राकृत भाषा में " श्री भुवन भानु केवलि चरित्र" नामक ग्रन्थ की रचना की थी । वे ८४ वर्ष की आयु भोग कर स्वर्ग वासी हुए थे।

पाठको ! उपर्युक्त हेमचन्द्रा चार्य जी के लेख में से "मुहं बंधिता चिट्ठई" यह पद दिन दहाड़े स्पष्ट सिद्ध कर रहा है कि सं० १६८७ विक्रमीय से ८४२ वर्षों के पूर्व मुख-वास्त्रि का मुख पर बांधने वाले श्वेताम्बर जैन-मुनि प्रस्तुत थे. ।

❀ चित्र परिचय के लिये ❀

प्रसनचन्द्र राजऋषिको राज स[illegible]ग ।

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,

"दीक्षा-कुमारी-प्रयासन भाग" नामक एक पुस्तक है। जिस के मुख पृष्ठ पर लिखा है, कि—"छपावी प्रसिद्ध करनार श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक पालीताणा।" उस के पृ० २७४ वें पर लिखा है, कि—"तमे तपागच्छना साधुओ अने मूर्ति ने माननारा छो तोपण तमारा क्रिया मार्ग नी अन्दर अनेक जातनी समाचारी प्रवर्ते छे। कोई मुखे मुख-वस्त्रिका बांधे छे अने कोई न थी बांधता।" यह पुस्तक जैन मूर्ति-उपासकों की ओर से छप कर प्रकाशित हुई है। ये लोग भी इस के द्वारा मुंहपत्ति को मुंहपर बांधने की सिद्धि ही को सिद्ध कर रहे हैं।

अब हम अपने पाठकों को श्री हेमचन्द्र सूरि के आगे के काल में ले चलते हैं यहां भी वे अपनी प्यारी मुख-वस्त्रिका को जैन लोगों के यति या उन के साधु ओं के मुंह पर ही बंधी पावेंगे। देखिये, जैन-धर्म के साथ ही मुख--वस्त्रिका का भी जन्म हुआ है। क्यों कि, जैन-धर्म का पवित्र आदर्श पृथ्वी के सन्तप्त जीवों के सम्मुख दया-धर्म के साथ, अहिंसा-प्रचार का सन्देश सुनाना है और उसी दया-धर्म के पालन करने-कराने तथा अहिंसा-व्रत का आरम्भिक चिह्न मुख-वस्त्रिका है। अस्तु। इस से यह ज्ञात होता है, और पाठकों को मानना पड़ेगा, कि जब दोनों अर्थात् जैन-धर्म और मुख-वस्त्रिका के उद्देश्य, जीव-हिंसा को जगत् से निर्मूल करना है, तब तो उन के उद्देश्य की एकता के अनुसार उन्हें निर्विवाद रूप से यह भी मानना ही पड़ेगा की, कि दोनों का जन्म भी प्राय-एक ही समय में हुआ है। तब तो उस की, अर्थात् मुख-वस्त्रिका की प्राचीनता के लिए यह देखना अवश्यम्भावी प्रतीत होता है, कि जैन-धर्म का संसार में कब प्रादुर्भाव हुआ।

यहां अनेकों लोगों तथा विद्वानों का यह मत है, कि जैन-धर्म की उत्पत्ति भगवान् महावीर के द्वारा जगत् में हुई। परन्तु उन की यह कल्पना केवल कल्पना मात्र ही है। अभी अभी यहां उस की छानबीन कुछ मोटी मोटी बातों से हम किये देते हैं, जिस से विचारशील पाठक जान पावेंगे, कि उन की कल्पना निरीभ्रम-पूर्ण है। देखिये, सब से पहले तो जैन धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में क्या भारतीय और क्या विदेशी, सभी विद्वान् अपनी अपनी डाफली पर अपना राग अलापते हुए खोज करते हुए हार मान बैठे हैं। दूसरे यदि हम जैन धर्म को भगवान् महावीर के द्वारा उत्पन्न हुआ जानें, तो उसे अभी लगभग २५०० वर्ष हुए मानना होगा। क्योंकि भगवान् बुद्ध देव के समकालीन थे। और बुद्ध देव को हुए, हमारी आज की इतिहासों के प्रमाणों से २५०० वर्षों के करीब का समय हुआ है। परन्तु वे विवेकवान् लोग यहां बड़ी भारी भूल कर जाते हैं, कि भगवान् महावीर तो जैनियों के चौवीसवें तीर्थंकर थे; न कि पहले। उन के पहले भी यहां तेवीस तीर्थंकर जैन जगत् में और भी हो चुके हैं। अस्तु। यदि इस धर्म का प्रारम्भ काल अनुमान के द्वारा ही माना जाय, तब भी पहले तीर्थंकर के जन्म कालही से मानना पड़ेगा। अत एव जैन धर्म की प्राचीनता के साथ ही साथ मुंह-पत्ति की प्राचीनता में भी, दोनों के जगत् में एक ही साथ प्रादुर्भाव होने के कारण कोई सन्देह अब पाठकों के सम्मुख नहीं टिक सकता है।

फिर यदि हम इस २५०० वर्षों के और भी पूर्व के काल की ओर बढ़ चलें, और पौराणिक काल की सीमा में प्रवेश करें, तो वहां भी हम अपनी मुंहपत्ति के पवित्र-तम शासन को, जैन जगत् के साधुओं के मुंह पर अपनी जड़ जमाये पाते हैं। तब तो आज के प्राप्त प्रमाणों से हमें

यह मानना पड़ेगा, कि पुराणों को जिस व्यवस्थित रूप में आज हम देख पाते हैं, वह उन का अपना रूप उन्हें महर्षि वेद-व्यास जी के द्वारा मिला हुआ है। ये महर्षि जी भारतीय महाभारत काल में इस जगत् में थे। भारत के महाभारतीय काल को बीते लगभग आज ५००० पांच हजार से ऊपर का समय हो चुका है। फिर, व्यासजी ने पुराणों को आज का रूप दिया है, न कि वे उन के रचयिता हैं। अतः कहना होगा कि पुराणों के निर्माण का काल इस ५००० वर्ष से और भी अधिक भूत काल के गर्भ में जा छिपता है। तब तो हमारे पाठकों को इस के साथ ही साथ विचरण करते हुए, यह भी अवश्य ही मानना पड़ेगा, कि हमारी मुंह-पत्ति का जो पवित्र शासन जैन-साधु जगत् में पौराणिक काल में पाया जाता है, वह ५००० वर्षों से भी ऊपर का समय है। अब हम अपने पाठकों की मनस्तुष्टि के लिए कुछेक पौराणिक प्रमाणों को यहां उद्धृत करेंगे। देखिये, शिव-पुराण के इक्कीसवें अध्याय के पच्चीसवें श्लोक में जैन-साधुओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है ।:—

" हस्ते पात्रं दधानाश्च, तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः ।
मलिनान्येव वासांसि धारयन्तोऽल्प भाषिणः ॥ "

अर्थात् जैन-साधु हाथों में पात्र रखते हैं, और मुख पर वस्त्र धारण करने अर्थात् बांधने वाले होते हैं। वे मलीन वस्त्रवाले और अल्प-भाषी होते हैं। इस श्लोक का " तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः।" चरण दिन-दहाड़े दुनिया को मुंहपत्ति को मुख पर बांधने का संदेश दे रहा है।

आगे श्रीमाल पुराण के तिहत्तरवें अध्याय के तेतीसवें श्लोक का भी अवलोकन कीजिये।

" मुखे दधानो मुखपत्तिं, बिभ्राणो दण्डकं करे ।

शिरसो मुण्डनं कृत्वा, कुक्षौ च कुंजिकां दधत् "॥

अर्थात् जैन मुनि लोग अपने मुख पर मुखवस्त्रिका बांधनेवाले, वृद्धावस्था में दण्ड धारण करने वाले, और शिर मुंडाकर अपनी कांख में ओघा [जीवों की रक्षा के लिये कती हुई ऊन का एक गुच्छा जो लकड़ी में बंधा रहता है] रखनेवाले होते हैं।

अब हम अपने पाठकों के आगे "अवनारचरित" नामक ग्रन्थ के अवतरण को रखते हैं, जो मुखवस्त्रिका के अस्तित्व की गवाही दे रहा है:—

पद्धरीछन्दः—"नित कथा यज्ञ घातक निदान,
घरि नयन मूंदि अरिहंत ध्यान।
सब श्रावक पोषादि व्रत साधि,
मुखपट्टि रूद्ध अरम्भ उपाधि ॥

अर्थात् जैन मुनि लोग प्रति दिन कथा करनेवाले पशु-यज्ञों का निषेध करनेवाले, नेत्र बन्द कर भगवान् अरिहन्त का ध्यान करनेवाले, सम्पूर्ण श्रावकों को पोषादि व्रत के करानेवाले, मुख-वस्त्रिका से मुख को बांधनेवाले और पचन-पाचन अग्नि आदि आरम्भों से अलग रहनेवाले होते हैं।

इन उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त, हम (१) ब्रह्मांड-पुराण (२) प्रभास-पुराण, (३) नाग-पुराण, (४) वाराह-पुराण, (५) अग्नि-पुराण, (६) मनुस्मृति, (७) योगवासिष्ठ, (८) अथर्ववेद, (९) यजुर्वेद, (१०) ऋग्वेद, और (११) सामवेद, आदि हिन्दुओं के प्राचीन और आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों से जैन-धर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हुए, हमारे उपर्युक्त कथन के अनुसार मुख-वस्त्रिका की प्राचीनता को भी निर्वि-

पाठकों ! देखा ! कितनी कठोर आज्ञा है ! मुख-वस्त्रिका को मुख पर बांध बिना, जिन-शासन में कोई भी मुनि इरियावहिका प्रतिक्रमण कदापि नहीं कर सकता । और यदि कोई भूल से कर भी ले तो उस के लिये उसी समय उक्त सख्त सजा देने का हुक्म है ।

[२] अब " सामायिक सूत्र " के प्रमाण का परिशीलन कीजिये । वह यों है:—

मुहणं तगेण कण्णोट्टियाए;

विणा बंधइजे कोवि सावए ।

धम्म किरियायं करेति तस्स;

एकारस्स सामाइयस्सणं पायच्छित्तं भवति ॥ "

अर्थात् यदि कोई श्रावक मुख-वस्त्रिका को कानों में बाँधे विनाही धर्म—क्रिया कर बैठे, तो उसके प्रायश्चित्त—स्वरूप उसे ग्यारह सामायिक करना पड़ता है । अतः श्रावकों को अपनी धार्मिक क्रियाओं का आचरण करते समय, मुख—वस्त्रिका को मुँह पर अवश्य बांधनी चाहिये ।

देखा सज्जनों ! जब गृहस्थी श्रावकों के लिए धर्म की ऐसी कड़ी आज्ञा है, तब साधु तो उस से अलग रह कर छुट कारा पाहि कैसे सकते हैं ! यही नहीं, गृहस्थ श्रावकों के लिये तो धार्मिक कृत्य करने के लिये दिन रात्रि में समय निर्धारित है; परन्तु साधु तो दिन रात के चौबीसों घंटे धार्मिक-जीवन और कृत्य से बंधे और घिरे हुए होते हैं । और एक यह भी कारण है, कि श्रावकों के लिए मुख-वस्त्रिका बाँधने का समय निर्धारित कर दिया गया है परन्तु साधुओं के लिये नहीं। क्योंकि, उनका तो जीवन ही, जीवन का प्रत्येक पल और विपल ही धर्ममय है । अतः वे तो

आठों पहर मुंह पर मुंह पत्ति बांधे रहने के लिये विवश हैं ही ।

[३] मन्दिर-मार्गी जैन भाइयों का कथन है कि मुख-वस्त्रिका, जो श्वेताम्बर जैन साधु लोग अपने मुख पर बांधे रहते हैं, यह जीव-हिंसा निवृत्यर्थ नहीं है । किन्तु, पुस्तकावलोकन के समय पुस्तक पर थूंक न गिर जाय, इस के लिये उस को उस समय मुंह के आगे रख लेना चाहिए । हमारी समझ में उस का यह उनका बताया हुआ उपयोग, उन्हीं के धार्मिक ग्रन्थ, " ओघ निर्युक्ति " की १६४—६६ वीं चूर्णिका की गाथा के अनुसार निरा निर्मूल और असत्य तथा असंगत ठहर जाता है, और उसी से मुंह पत्ति की आवश्यकता भी जैन धर्मानुयायियों के लिये अवश्यमेव प्रतीत होती है । देखिये, उस गाथा का कथन है, कि:—

"संपाइम रयणु, परम झण ठावयंति मुहपोतिं ।
नासं मुंहं च बन्धइ, ती एव सहि पमभन्तो ॥"

अर्थात् खुले मुंह से बोलने में जीवों की हिंसा होती है । अतःमुख—वस्त्रिका को अवश्यमेव मुंह पर बांधे रहना चाहिये ।

[४] " श्रीप्रकरण रत्नाकर " नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत, मन्दिरमार्गियों के आचार्य श्री नेमिचन्द्र सूरि ने अपनी " प्रवचनसारोद्धार " नामक रचना में भी मुख-वस्त्रिका को जीवहिंसा निवृति के लिए उसे मुख पर बांधने का आदेश करते हुए, उस की सम्भावना—स्थिति—को सिद्ध किया है ।

[५]—मन्दिर—मार्गी सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य श्रीमद् चिदानन्द जी महाराज द्वारा रचित "स्याद्वादानुभव—रत्नाकर नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ५४ की ३३ वीं पंक्ति में यह उल्लेख पाया जाता है, कि " कान में मुंह पत्ति गिरा कर व्याख्यान नहीं देना, " यह कहना ठीक नहीं । क्यों कि, आचार्यों

परम्परा से कान में डोरा डाल कर ही व्याख्यान देने का उपदेश दिया है। पाठको! देखा, मुंहपत्ति की परम्परा को! क्या जैन-शासन के आचार्यों की उत्पत्ति के साथ ही साथ, आप मुंहपत्ति की उत्पत्ति को भी, अपने विवेक से सच भी न मानेंगे? चाहे कोई हठ—धर्मी लोग इस बात को मानने में आनाकानी करते रहें, परन्तु विवेकशील संसार तो उन्हें इस को अपनी परम्परा ही की ओर सुधार के लिए प्रयत्नशील होगा।

आगे चल कर यही आचार्य जी उसी अपने ग्रन्थ में, मुंहपत्ति के स्थान और समय का निर्धारण करते हुए, उस की पुष्टि के प्रमाण में कहते हैं, कि " कान ही में मुंहपत्ति को बांध कर व्याख्यान देना चाहिए।"

[६]-देखिये, " हीरा-कुमारी, द्वितीय भाग, पृष्ठ २७४ के उद्धरण से भी मुख-वस्त्रिका की परम्परा सिद्ध होती है। उस में कहा गया है, कि "तमे तप गच्छ ना साधु छो। अने मूर्ति ने माननारा छो। तो पण तमारा क्रिया-मार्गनी अन्दर अनेक जातनी सामाचारि प्रवर्ते छे। कोई मुंहे मुख-पत्तिका बांधे छे, अने कोई नथी बांधता।"

इस कथन से हम तो हमारे मतलब की केवल इतनी ही बात को ग्रहण करते हैं, कि यहां भी मुख पत्तिका का प्रचार और स्थिति अपना शासन जमाये बैठे हैं। इस से यह तो हर एक को मानना ही पड़ेगा, कि उस का प्रचार पहले ही से उस समय था। और जब प्रचार था, तो स्थिति भी पहले से होनी ही चाहिए।

[७] पहले के मूर्ति—पूजक साधु और गृहस्थ सभी के यहां मुख-वस्त्रिका का आदर और आवश्यकता थी, थी ही क्यों, है भी। इस के भी अनेकों प्रमाण खरतर गच्छीय समाज में मिलते हैं। देखिये, कृपाचन्द्र सूरि व्याख्यान देते

❀ चित्र परिचय के लिये ❀
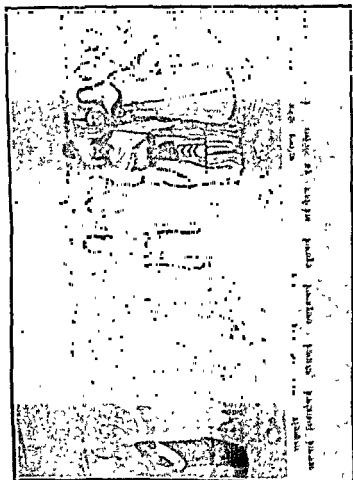
इसमें श्री आदिनाथ भगवान् का चित्र उल्लेखनीय है।

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस

समय मुख पर मुख-वस्त्रिका बांधते हैं। यही हाल, आज, रतनशीनी पोल दोसी, वहाया अहमदाबाद, डेलानों सम्प्रदाय के धर्म-विजय जी पन्यास, मणि विजय जी, दादाजी के सम्प्र-दाय के यहां सिद्धिविजयजी आचार्य और मेघ-विजय जी पन्यास, आदि संवेगी साधु लोग, अपनी आचार्य—परम्परा के अनुसार, आज भी व्याख्यान देते समय मुख-वस्त्रिका को मुख पर धारण कर लेते हैं! बांध लेते हैं। अब सवाल यह पैदा होता है, कि यदि मुख-वस्त्रिका का प्राचीन गौरव जैन-जगत् के सम्मुख प्रत्यक्ष न हुआ होता, तो आज के मन्दिर-मार्गी भाई उस के प्रचार को मानने ही क्यों और क्यों लगते! परन्तु यहां भी मुख-वस्त्रिका की एक मात्र प्राचीनता ही तो है, जो हठ धर्मियों की हठ को आज भी हठात् पीछे हटा ही रही है! मन्दिर-मार्गी जैन बन्धुओं में से जिन के यहां दया-धर्म की आज भी कुछ मान-मर्यादा है, वे तो अपनी प्राचीन प्रथाही का अनुसरण आज भी कर रहे हैं। किन्तु, जिन बेचारों के गले में पाश्चात्य फैशन ही ने अपनी फांसी की जंजीर कस दी है, और जिन्हें अपनी वेष-भूषा और शान शौकत ही का हर दम ध्यान बना रहता है, वे भले ही चाहे, दिन दहाड़े दया के साथ अन्याय और अपमान का बर्ताव कर बैठे हों। और, जिस के परिणाम-स्वरूप, वे यातो बेचारी सनातन मुख वस्त्रिका को अपने घरों से और मन्दिरों से बिलकुल ही देश निकाल दे बैठे हों; या नहीं तो उसे उन्हों ने उस के उचित स्थान, मुंह से घसीट कर, हाथों में, हाथापाई करते हुए ला पटकी हो। अस्तु।

[८] मन्दिर-मार्गी जैन बन्धुओं के कई आचार्यों ने भी सूत्रों ही का अनुकरण और अनुसरण कर के, आधुनिक समय तथा मध्य-काल में जो ग्रन्थ निर्माण किये हैं, उन में

मुख-वस्त्रिका की स्थिति और स्थान का निर्णय किया है। उदाहरणार्थ, आचार्य देव सूरि जी ने स्वरचित "समाचारी" ग्रन्थ में कहा है, कि "मुख-वस्त्रिकां प्रति लेख्य मुखे बध्वा प्रति लेखयति रजोहरणम् ।" अर्थात् मुख-वस्त्रिका का प्रति लेखण कर और उसे मुंह पर बांधकर, रजोहरण की प्रति-लेखणा करनी चाहिए।

[६]-इन्हीं देवसूरि जी के पूर्वाचार्य उद्योतसागर जी ने भी अपनी रचना "श्री सम्यक्त्व मूल बार व्रतनी टीप" के पृष्ठ १२१ पर, इस तरह अपने विचार प्रकट किये हैं, कि "तेओ चल दृष्टि दोष ने सामायिक लई ने थाड़ी दृष्टि ने नासिका ऊपर राखे; अने मन मां शुद्ध श्रुतोपयोग राखे; मौनपणे ध्यान करे; तथा जे सामायिक वंत ने शास्त्र अभ्यास करवो होय, जो जयणा-युक्त थई मुहपत्ति मुखे बांधी ने पुस्तक ऊपर दृष्टि राखीने भणे; तथा सांभले ।"

प्रियवर पाठको ! देखा, इस रचना में भी मुंहपत्ति के स्थान और स्थिति का पता आचार्य जी स्पष्ट साफ देरहे हैं । तब कोई यह शंका उठा ही कैसे सकता है, कि जैन-जगत् में मुंह-पत्ति का गौरव आज का है, नया है, आधुनिक कालीन है । क्या, सत्य भी इस भांति कहीं किसी के दबाये कभी दबा और दब सकता है ? कदापि नहीं ! बिलकुल असम्भव !! क्योंकि, "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।" (श्रीमद्भगवद्गीता, अ० २, १६) के अनुसार, असत्य कभी सत्य, और सनातन सत्य कभी असत्य का रूप धारण नहीं कर सकता है । अस्तु ।

अब हम मन्दिर मार्गियों के रास, ढाल, स्तवन आदि के प्रमाणों की ओर अपने प्रिय पाठकों का चित्ताकर्षण कर उन्हें दिखाने की चेष्टा करेंगे, कि ये भी मुख-वस्त्रिका की प्राचीन-

कालीन स्थिति ही का ज़ोरों से समर्थन कर रहे हैं। देखियेः-

सर्व प्रथम तो, जिस सनातन और प्रकृत धर्म की प्रवृत्ति धारा जिस ओर एक बार प्रवाहित हो उठती है, उसी ओर उस के सम्प्रदाय का मुंह भी वेग से मुड़ जाता है, मुड़ ही क्यों, हम तो यों भी कह सकते हैं, कि वह सम्प्रदाय वेग-पूर्वक उसी प्रवृत्ति-प्रवाह में बह निकलता है। उस समय उस प्रचण्ड प्रवाह का सामना करने का साहस करना, नितान्त भ्रम-पूर्ण और असत्य तथा असम्भव उतरता है। हां, युगान्तरों के पश्चात् जब क्रान्ति की भीषण आवाज देश व्यापी होने का दम भरती है, तब भले ही कोई सामुदायिक शक्ति या महान् आतमा विशेष, उस भीषण प्रवाह को रोकने की चेष्टा और चातुरी दिखावे। परन्तु यह होता है, तभी जब कि किसी क्रान्तिकारी महा पुरुष या महान् शक्ति का आविर्भाव इस अवनी तल में हो आता है। अन्यथा, जिधर देखो, उसी तरफ, उसी प्राचीन और प्रचलित धर्म का अनु-गमन और अनुकरण अबाधित रूप से होता रहता है। जगत् की इसी अटल और अनादि काल से चली आई हुई रीति के अनुसार, मन्दिर-मार्गी जैन बन्धुओं, सन्तों, एवं श्रावकों के रासों, ढालों, स्तवनों आदि नवीन रचनाओं में भी तो, जगह जगह, उसी प्राचीन मुख-वस्त्रिका ही की स्थिति और स्थान का सन्देश सुनाई दे रहा है। उन में भी तो स्थान स्थान पर उसी के प्रति उन के उद्गार उभर कर बाहर पड़ रहे हैं। सच है, दूसरे नये विचार और उद्गार आते भी तो कहां से ? "महाजनो येन गतः स पन्थाः।" के अनुसार, जो सत्य, शिव और सुन्दर है, उसी का तो अहर्निशि गुण-गान और बखान पद पद पर किया जाता है; और स्वभाव रूप से होता है। अतः मन्दिर-मार्गी जैन बन्धुओं के लिए भी तो यही बात इष्ट

* चित्र परिचय के लिये *

पांचों पांडव शत्रुञ्जय पर्वत पर संथारा किये हुए हैं।

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.

[३] सामाचार्यजी के शिष्य विनयचन्द्रजी अपने द्वारा रचित "सुभद्रासती की पंच ढालिया" नामक पुस्तक में यों लिख रहे हैं—

"तूं जैन यति गुरु मान छे, तूं तप करे बहु ध्यान छे। रहता मेले थाने छे ॥ २ ॥ सु० ॥ ते भिख्या ले घर अण आणजी, निज पीता धोवण पाणी। तूं श्रावका हुई सुणवाणी ॥ ३ ॥ सु० ॥ तूं धर्म कारण मुंह बांधे छे पिण नयणां नयण तूं सांधे छे। तू नचीती पति के खांधे छे ॥ ४ ॥ सु० ॥"

देखा, पाठको ! विनयचन्द्रजी की शहादत को ! यहां भी वही अपना रोज का पुराना राग, मुखवस्त्रिका की प्राचीनता का विनयचन्द्रजी की ढालिया अलाप रही है। इसी राग में, उस के स्थान का सुर भी, अपने पहले ही राग का समान-गति-शील बन रहा है।

[४] अब, कवि पुण्य-विलास यतिजी के "मानतुंग-मानवती" रास का भी विज्ञ पाठकजन जरा मुलाहिजा फर्मावें। आप अपनी रास की ४८ वीं ढाल के ऊपरवाले दोहे में इस प्रकार अपना सुर अलापते हैं।

"केइ भणे केइ अर्थ ले, के वांचे सूत्र सिद्धान्त।
मुंहडे बांधी मुंहपत्ती, मोटा साधु महन्त" ॥

पाठको ! यह तो हुआ मन्दिर-मार्गी जैन-बन्धुओं के धर्म-गुरुओं की शहादत का सार ! अब, जरा, कृपा कर के, मुंहपत्ति की प्राचीनता के पक्ष को समर्थन करनेवाली, मन्दिर मार्गी एक दो श्रावकों की सम्मतियां भी सुन लें। देखिये, ऋषभदासजी अपने बनाये हुए "हित-शिक्षा नो रास" नामक

ग्रन्थ में एक स्थान पर कहते हैं।

"मौन करी मुख बांधिये साठ वह मुखकोशे ।"

देखा, यदि मुंहपत्ति बांधने की प्रथा का प्राचीन काल प्रचलन न रहा होता, तो श्रीयुत आत्मारामजी अपने 'हित शिक्षा का रास' में बेचारी मुंहपत्तिका के हित-चिन्तन के पाठों का उल्लेख ही क्यों और कैसे करने बैठते! आगे चल कर वही महाशय अपने उसी ग्रन्थ की दूसरी आवृत्ति में पुनः यों कहते हैं।

मुंहे बांधी ते मुहपत्ती, हेठे पाटो धारि।
अति हेठी दाढ़ी थई, जोतर गले निवारि ॥ ३ ॥
एक काने धज गम थई, खम पछेडी ठाम।
केडी खोशी कोथली, नावे पुण्यनुं काम ॥ ४ ॥"

अर्थात् मुख-पत्रिका उसी को कहते हैं, जो मुंह पर बांधी जाय। यदि वह मुंह के नीचे है, तो वह 'पाटा' के समान रूप धारण कर लेती है। उस से भी अधिक नीची लटकती रहने पर वह दाढ़ी के साथ एक सौलिम का डाह पैदा कर देती है। यदि उसी को गले में रक्खा जाय, तो जो वह जोत-सी दिखाई देगी। और एक कान में लटकाने पर वह ध्वजा के समान फहराने लगती है। फिर, कन्धे पर रक्खी जावे, तो वह पिछौड़ी दीख पड़ती है। कमर में खोंसी रहने पर कोथली और इस तरह दूसरे स्थानों पर रखने से अर्थात् उसे उस के वास्तविक स्थान मुंह से बरजोरी पूर्वक इधर उधर घसीट ले जाने पर उस का कोई पुण्य भी नहीं रहेगा। सज्जनो! देख लिया! यदि मुख-पत्तिका की प्राचीन काल ही से, उस के अपने स्वारूप्य-सौन्दर्य और सेवा-प्रदायक गुणों के कारण, इतनी प्रसिद्धि जन साधारण में प्रकट न

होती तो ऋषभदासजी उस की हित-चिन्तना में इतनी हिमायत और संसार से उस के हिफाजत की शिफारिश ही क्यों करते।

विद्वान् और विवेकशील पुरुष हमारे कथनों की सचाई को अपने तथा पराये और अपने शास्त्रकारों के अनुभव की कसौटी पर कस कर परखने का प्रयत्न करें।

अब हम अपने पाठकों के सम्मुख चित्रों के प्रमाणों द्वारा मुख—वस्त्रिका की प्राचीनता का सन्देश रक्खेंगे। यह बतलाने की यहांहमें कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, कि संसारके ज्ञान की रक्षा और उसकी अहर्निशि-उन्नति में चित्रों का किस कदर हाथ रहा है और रहेगा। चित्र जहां मकानों की शोभा का परम रम्य मसाला है, उस के साथ ही वह उन मकानों में आने वाले नवजात शिशुओं के जीवन में तरह तरह की क्रांतियों के पैदा करने वाला बड़ा भारी रासायनिक-तत्ववेता है, यह बात भी संसार के विज्ञ और अनुभवशील पाठकों से किसी प्रकार छिपी हुई नहीं है। जो काम बड़ी बड़ी इतिहासों के सैकड़ों पन्नों को वर्षों तक बीसियों बार पलटते रहने से नहीं हो पाता, वही काम बात की बात में चित्र जगत के द्वारा सुलभता पूर्वक और सर्वत्र हो जाता है। फिर चित्र भी उन्हीं बातों या वस्तुओं तथा व्यक्तियों के जन-साधारण में आदर होते हैं, जो बातें, वस्तुएं या व्यक्तियाँ देश और दुनियां में प्रायः प्रसिद्धि पाचुकती हैं। जो बातें, वस्तुएं, व्यक्तियां तथा रीति-रवाज जितने ही अधिक प्राचीन और प्रसिद्धि पाये हुए होंगे, या होते हैं, उन के चित्र, या तद्विषयक चित्र भी उतने ही अधिक व्यापक रूप से देश की दशों दिशाओं में प्रचार पाये हुए होते हैं। इस के अतिरिक्त, जिन बातों या व्यक्तियों का सम्बन्ध किसी कुटुम्ब विशेष ही से होता है, तो उनके चित्रों

❀ चित्र परिचय के लिये ❀

नाटक करते हुए इलायची कुंवर शान्त स्वभावी
मुनिश्री को देख वैराग्य प्राप्त हुए ।

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस

अनुपम देनगी देश के दायरे को आज मिली हुई है, यह सब हमारे प्रचीन चित्रों ही की देन है ! यह "हतो वा प्राप्यसे स्वर्ग जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम् ।" के शंखनाद की पहचान, आज कई शताब्दियों के पश्चात् जो देश को हुई है चित्रों ही की यह एक मात्र बदौलत है । इतिहास को अन्धकार से प्रकाश में लाने के लिए जितनी मदद चित्रों ने की है, करोड़ों रुपया खर्च कर के शायद उतनी मदत कोई सम्राट भी कभी कर न पाता। पहले हम कौन थे? कैसे थे? हमारा वेष-विन्यास कैसा रहा था? उस वेष-भूषा से हम किस धर्म और मजहब के माने जाते थे, या, माने गये ? और उस हमारी वेष-भूषा से हमारे देश की आबहवा के सम्बन्ध में हम ने क्या जाना ? और तब उस आबहवा से हमारे धर्म का, हमारे 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के भावों का, कैसा स्वरूप रहना चाहिए था ? आदि बातों की गहरी तली में हमारे पास, देश की उस संकटापन्न अवस्था में, केवल प्राचीन चित्रों ही का एक मात्र आधार था। यह उन प्राचीन चित्रों ही की बरकत थी, जिस से हम ने या इतिहास-विद् विद्वानों ने, देश की आबहवा का मनन कर के, ऐतिहासिक घटनाओं के समयों और स्थानों का निश्चय किया; और जो निश्चय आज संसार के आगे 'बावन तोला पाव रत्ती' के घाट सोलह आना खरा उतरा ।

हमारे इस चित्र-परिचय से यह भाव निकलता है, कि चित्र, सामाजिक परिस्थितियों के पूर्णतः अनुकूल बनते हैं। या यूं कहो, कि जिस समय जैसी वेष-भूषा, पहिनावा-ओढ़ावा समाज में होता है, चित्र, ठीक उसी के अनुकूल बना करते हैं । अपने इसी गुण के कारण, देशों की ऐतिहासिक घटनाओं के समय स्थान, और जातियों का पता लगाने में चित्र, विद्वत् संसार के आगे, इतने अधिक प्रामाणिक सा-

जाते हैं। और इसी कारण से प्रत्येक देश के आबाल-वृद्ध नर-नारी, चित्रों के चक्कर में फँसे पड़े नजर आते हैं।

अब हम यहाँ कुछ ऐसे ही चित्रों, जो प्राचीन समय की सामाजिक परिस्थिति को दिखानेवाले होंगे, का वर्णन क्रमशः संक्षेप में अपने पाठकों के सामने करेंगे, जो मुख-वस्त्रिका की प्राचीनता में हमें प्रमाण का काम देंगे। साथ ही प्रसंगवश हमें यह भी कह देना पड़ेगा, कि यदि प्राचीन काल में मुख-पत्ति का प्रचार और स्थिति संसार में न हो पाती, तो ऐसे चित्रों की बनावट ही कब सम्भव थी। और यदि किसी व्यक्ति या समाज विशेष ने ऐसे चित्रों को निर्माण, किसी पक्षपात विशेष से कभी कर लिया होता, तो भी वे जन-साधारण में घर-घर और दर-दर आदर पाने ही क्यों लगे थे। फिर, पड़ौसी समाज ने 'भेड़िया धसान' के न्याय-नियम के नाते यदि उन्हें मान भी लिया होता, उन के यहां उन्होंने आदर भी पाया होता, तब भी अन्य धर्मावलम्बी समाज के विद्वान् पुरुषों के सामने, उन झूठे और कपोल-कल्पित चित्रों की चर्चा और चमत्कार कब और क्यों टिकने लगता। अस्तु

[१] सब से पहले हम उस चित्र की चर्चा करते हैं, जो 'सप्त दश आचार्यों का' है; और जो सन् १९११ ईसवी के अप्रैल मास की 'सरस्वती' (मासिक-पत्र, इंडियन प्रेस, इलाहबाद) के पृष्ठ २०४ पर छपा है। इस में, बांई ओर से गिनती करते हुए, जो नम्बर १२ का चित्र है, वह आदिनाथ अर्थात् भगवान् ऋषभदेव जी का है। जिन के मुखारविन्द पर मुख-वस्त्रिका बंधी हुई है। हां, इस पूरे चित्र पर दृष्टि-पात करने से, बारीकी से देखने पर यह पता भली भांति चल सकता है, कि इस में के कई महद् आचार्यों के चित्र, उनके . के पश्चात्, उनके अपने चरित, चरित्र और कथा-

ओं के आधार पर तैयार किये गये हैं; और उन का आधार भी प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ ही है; परन्तु उस में उन की असली आकृति में कुछ रूपान्तर अवश्य आगया है । पर हां, उन के वेष-विन्यास में जरा भी कोर-कसर व काट छांट वहां नहीं होने पायी है । चाहे कुछ भी हो, हमारा तो अभिप्राय इस चित्र के द्वारा केवल यही सिद्ध करने का है, और था, कि प्राचीन समय में भी मुख-वस्त्रिका का प्रचलन संसार में था। और तभी तो चतुर चितेरे ने उस का दृश्य यहां दिखाया है ।

[२] दूसरा चित्र, जो जैन-जगत् में प्रायः प्रत्येक जगह पाया जाता है, वह भगवान् आदिनाथ के पुत्र; महात्मा बाहुबली जी का है । चित्र में बाहुबली खड़े हुए हैं; और उनके मुंह पर मुख-पत्ति बंधी हुई है। बाँई ओर उनके रजो हरण पड़ा है। और दाहिनी ओर ब्राह्मी जी तथा सुन्दरी जी नामक उन की दोनों बहिनें उन से प्रार्थना के रूप में हाथ जोड़े हुए कुछ कह रही हैं इस चित्र से भी मुख—वस्त्रिका का मुख पर बांधना प्राचीन काल में पाया जाना सिद्ध हो जाता है ।

[३] तीसरा चित्र जो जैन—संसार में प्रसिद्धि पाया हुआ और व्यापक रूप से पाया जाता है, वह है 'गजसुखमाल मुनि जी का चित्र ।' आप श्री कृष्ण महाराज के कनिष्ठ बन्धु थे। इस में मुनिजी पद्मासन मारे ध्यानस्थ होकर विराजे हुए हैं। उन के मुंह पर मुंहपत्ति बंधी हुई है । पास ही में दाहिनी ओर खड़ा हुआ एक सोमल नामक पुरुष इन के सिर पर मिट्टी का आलवाल बना कर, उस के भीतर आग के अंगारे भर रहा है। कहने का हमारा आशय यह है, कि इस समय में, अर्थात् गजसुखमालजी मुनि के समय में भी देश में मुख-वस्त्रिका का मुख पर बांधने का वापर रहा था।

[४] चौथा चित्र, जो राजर्षि प्रसनचन्द्रजी का जैनियों के घरों में देखा जाता है, इस में भी ऋषिजी के मुख पर मुख-वस्त्रिका बंधी हुई है। इस से यह सिद्ध हुआ, कि राजर्षि प्रसनचन्द्र के जमाने में भी मुख-वस्त्रिका की स्थिति और मान जगत् में था।

[५] पांचवा चित्र जो हमें देखने को मिलता है, यह 'नाटक करते हुए इलायची कुंवर, शान्त स्वभावी मुनि श्री को देख वैराग्य को प्राप्त हुए' के दृश्य का द्योतक है। यह चित्र प्राचीन भण्डारों से प्राप्त हुए चित्रों में से एक चित्र है। इस में दिखाया गया है, कि एक नटिनी पर आसक्त होनेवाले सेठ धनदत्त का पुत्र किसी नाटक मंडली में सम्मिलित हो कर, एक राजा के सम्मुख अपनी नट-विद्या का कौशल दिखा रहा है। उसी अवसर पर, दो तपोनिष्ठ साधु एक गृहस्थ के घर पर भिक्षाम ग्रहण कर रहे हैं और उन के मुख पर मुख-वस्त्रिका बंधी हुई है। इन्हें देखते ही सेठ के पुत्र को वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। हमारा इस से यह आशय सिद्ध होता है, कि प्राचीन भण्डारों से प्राप्त होनेवाला यह चित्र भी मुखवस्त्रिका को मुख पर बांधने की प्राचीन परिपाटी का प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहा है।

[६] छठा चित्र जो हमें देखने को मिलता है, यह 'पांचों पांडव शत्रुंजय पर्वत पर संस्थारा किये हुए हैं' का दृश्य दिखाता है। इस में, सूत्रों के वर्णनानुसार महावीर पांडव दीक्षित होकर, हिमालय पर्वत की उपत्यका में नदिनी की बालुका पर संथारा ले कर अर्थात् संयम से लेटे हुए हैं। पास में उन के एक एक रजोहरण और एक एक झोली है। साथ ही, सभी के मुँह पर मुख-वस्त्रिकाएँ भी बंधी हुई हैं। कहने का तात्पर्य यह है, कि महावीर पांडवों के जमाने में भी मुख-वस्त्रि

का का मुख पर बांध ने का प्रचार और परिचय लोगों में था

[७] अन्त में अब हम अपने पाठकों को, 'चित्र-शाला प्रेस, पूना' से प्रकाशित होनेवाली "सचित्र-अक्षर- लिपि" नामक हिन्दी पुस्तक के एक चित्र का हवाला देते हैं। स में जो 'य' अक्षर का बालकों को बोध कराया गया है, वह 'यति' के चित्र द्वारा है। यह यति का चित्र भी वही अपने प्राचीन आदर्श के अनुसार है। अर्थात् यहां भी यति के मुख पर मुख-वस्त्रिका बंधी हुई है। यदि मुख-वस्त्रिका का इतना व्यापक विस्तार देश के कौने कौने में प्राचीन समय से प्रचलित न हुआ होता, तो एक जैनेतर प्रेस को ज्ञात ही कैसे हुई होती। परन्तु असली बात तो यों है, कि जैन-यति लोग अपने मुख पर मुख वस्त्रिका बांधते आ रहे हैं। प्रायः सभी देशों के सभ्य समाज और उन के व्यक्तियों को फिर वह चाहे जैन हो या जैनेतर, यही बात ज्ञात है, कि जैन यति लोग अपने मुख पर मुख-वस्त्रिका बांधते हैं।

सूचनाः—यदि इन में से ऊपर के छः चित्रों का एक ही समय और एक ही स्थान पर दिग्दर्शन करना चाहें, तो वे हमारी बनाई हुई "सचित्र-मुख वस्त्रिका निर्णय" को एक बार मगांकर देखें।

कहिये, पाठको ! क्या मुख-वस्त्रिका को मुख पर बान्धने की प्राचीनता के सम्बन्ध में और भी किन्हीं प्रमाणों की आप को आवश्कता है ? क्या, हमारे ऊपर के, जैन व जैनेतर आर्ष और प्राचीन ग्रन्थों, विद्वानों, व चित्रों के दिये हुए प्रमाणों से, अभी तक भी आप की परितुष्टि नहीं हुई है ? क्या, इन से यह भली भांति ज्ञात नहीं हो पाया है, कि मुख-वस्त्रिका मुख पर बांधने की जो [illegible] देश में, या देश के बाहर प्रचलित है, वह [illegible] की नई और थोथी नहीं

है। प्रत्युत इस के, यह देश की आबहवा और समाज की परिस्थिति के अनुसार, जैन-जगत् के साधु सन्तों के लिए तो कम से कम उन के तप-साम्राज्य का चिन्ह है। अहिंसा के अनुराग का उज्ज्वल फल है, सम-दर्शिता एवं साम्यवाद का सुन्दर शृंगार है, भावी जीवन के सुख-सदन की द्वार ताली है, जीव-हिंसा-निवृत्ति का सुदृढ़ एवं सात्विक कपाट है, धर्म के अ जापन पर लगाने का रजत निर्मित ठप्पा है, ममत्व-मंजूषा के कपाट को सदा के लिये उद्घाटित करने की अद्भुत यन्त्रिका है, और मनुष्य को उस के अपने कर्तव्य का करारा ज्ञान करानेवाली महीयसी महिमा है। अस्तु।

अब हम अपने विज्ञवर पाठकों को वैज्ञानिक ढंग से मुख-वस्त्रिका की उपयोगिता का दिग्दर्शन करायेंगे। जिस से वे भली भांति समझ पायेंगे, कि जैन मुनियों के मन और मस्तिष्क का मेल उन की मुख-वस्त्रिका के संयोग से, उन के देश की भू प्रकृति और आब हवा के साथ किस तरह एक-रस रूप से मिला हुआ है।

देखिये, हमारा भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। तब तो कृषि के लिए विपुल वर्षा, विपुल प्रकाश, विपुल वायु, विपुल धूप और सुन्दर उर्वरा भूमि की परम आवश्यकता है। या यूं कहो, कि किसी भी कृषि-प्रधान देश के लिए प्रकृति के इस पंचामृत की उतनी ही अविराम आवश्यकता है, जैसे कि शरीर धारण करने के लिए प्राण की। अतः मानना होगा कि कि हमारा देश उष्णता प्रधान भी है। फिर हम अनुभव और आंख के द्वारा प्रति पल यह भी देखते रहते हैं, कि उष्णता-प्रधान देशों के पदार्थ अपने पहले के असली रूप में अधिक समय तक नहीं टिक सकते। यहां के फल-फूल, पक्वान्न, मिष्टान्न, तथा अन्यान्य भोजन के पदार्थ बहुत जल्दी ही,

गरमी के कारण सड़ और घुस जाते हैं। फिर बस्तियों में यत्र-तत्र तेली-तंबोली, नाई-धोबी, चमार, और कसाई, रंगारे और कूंजड़े आदि जाति तथा पेशों के लोग भी तो रहते हैं और समय समय वे अपने सड़े-गले-बसाये हुए पदार्थों आदि को भी तो रसा-तल पर फेंकते-फिंकाते रहते हैं। जिस से यहां की वायु शीघ्रही दूषित हो जाती है। अब इस दूषित वायु में भी जीवन को हम कैसे बनाये रक्खें, बनाये ही क्यों, हम कौन से सदुपायों की शरण लें जिस से कि हमारी प्राण शक्ति का रंच-मात्र भी ह्रास न हो और हम पूरे सौ या उस से भी अधिक समय तक सरलता-पूर्वक जीवन वहन कर सकें। इस के लिए हम अब पुरुष और स्त्री-समाज, तथा बालक-गण और यहां के जैन साधु सन्त व यति लोगों और सनातन भारतीय धर्मावलम्बी संन्यासियों के जीवन और उन के रीति रस्मों आदि का कुछ सिंहावलोकन करें। क्योंकि, बिना इन की ऐसी छानबीन किये हम अपने पाठकों को मुंह-पत्ति का वैज्ञानिक चमत्कार, और तब उस को धारण करने की परिपाटी का धार्मिक रूप में परिणति प्राप्त करने का परिचय, पूर्ण रूप से नहीं दे सकते।

देखिये, हमारी भारतीय स्त्री-जाति विशेषतः घरों में रह कर जीवन के कार्यों को सम्पादित करती है। दूसरी ओर हमारी पुरुष जाति, स्त्री जाति के विपरीत, घर के बाहर के कामों का भार अपने कन्धों लेती है। फिर घरों की वायु, बनिस्बत कल कारखानों, या किन्हीं व्यावसायिक स्थानों के, अधिकतर शुद्ध रहता है, जिस का उपभोग स्त्री-जाति के हक में पुरुषों की अपेक्षा विशेष रुप से किया जाता है। विपरीत इस के, पुरुषों को बाहर की मैली-कुचैली दूषित वायु से अधिक काम पड़ता है, क्योंकि जैसा हम अभी ऊपर कह

आये हैं, । उनका जीवन ही घरों के बाहर का है । और विशेष कर आज के चढ़ा-ऊपरी के जमाने में तो बेचारे पुरुष-समाज का अधिकांश जीवन घर से बाहर ही का बन गया है । घर तो अब उस के लिए रात के समय केवल बासा लेने का स्थान मात्र रह गया है । आज कल उस के भोजन का प्रबन्ध तक अब होटलों और उपहार गृहों ने अपने सिर कन्धों लेने का बीड़ा उठाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज के भारत के इस बेरोजगारी के जमाने में पुरुष की घर सम्बन्धी अधिकांश आवश्यकताएं, घर से बाहर ही पूरी होने लगी हैं । फिर चाहे, उन के कारण हमारी प्राण—शक्ति का सत्यानाश ही क्यों न मिल गया हो । यही कारण है कि प्रकृति माता ने मनुष्य जाति की इस भावी दशा का अनुमान कर, पुरुषों को मूंछोंदार बनाया है । विपरीत इस के स्त्रियों को मूंछें नहीं होतीं । परन्तु मूंछों की इस विकृति के कारण, घरों की शुद्ध वायु में रहने से, न तो स्त्री—जाति के जीवन में कोई न्यूनता ही हो पाई है, और न बाहर की, विभिन्न व्यावसायिक स्थानों की दूषित और गंदली वायु ही में रहने से मूंछोंदार होने के कारण मनुष्य—समाज की प्राण—शक्ति का ही कोई ह्रास हो पाया है। क्योंकि, मनुष्य जो नाक तथा मुंह के द्वारा श्वांस अन्दर खींचता है, वह नाक और मूंछों के बालों में से छन छन कर शरीर में प्रवेश करती है यही कारण है, कि भारतीय—सनातन—धर्म में गृहस्थी लोगों को मूंछों के बाल कटवाना पाप और अपशकुन माना गया है । इसी प्रकृति—जात परिस्थिति का शताब्दियों तक गहरा अनुभव कर हमारे भारतीय प्राचीन धर्म—विद् पुरुषों ने, पुरुष समाज के लिए मूंछों का रखवाना आवश्यक बता कर उसे धर्म का जामा पहिनाया था। फिर हम देखते हैं, कि

यह चित्र वही है जो कि-"बच्चों के लिये सचित्र अक्षर लिपी" उस में "य" से "यति" का चित्र मुख-वस्त्रिका मुख पर ही बांधने का सबूत दिखाने वाला देकर चित्रशाला पुना ने निकाला है।

उसी मनुष्य समाज में, बालक लोग पेशाव करते समय, या टट्टी फिरते समय अकसर बातचीत किया करते हैं फिर भी इस काम के लिए उन्हें कोई रोक टोक और मुनादी नहीं है। विपरीत इस के, नर तथा नारी समाज को इस समय अर्थात् टट्टी फिरते हुए और पेशाव करते समय बातचीत करने की धार्मिक मुनादि है। यह भेद—भाव-क्यों किया गया? सुनिये, बालक लोग आजादी से इधर—उधर खुली जगह में टट्टी या पेशाव करते हैं। जहां की हवा खुली हुई रहती है। और वयो—वृद्ध नर या नारी समाज दबे-छिपे स्थानों में, टट्टियों में या मकानों की ओट में, इन कामों को करते हैं। जहां की हवा खुली हुई नहीं, वरन् गँदली और दूषित होती हैं। यही कारण है, कि इस समय उन्हें बोलने की मुनादी की गई है। क्योंकि, इन गंदले और दूषित वायु से भरे स्थानों में वे बोलेंगे, तो श्वासोच्छ्वास से द्वारा दूषित वायु उनके शरीर में पैठेगी और वहां जो कर वह तरह तरह के रोगों को उत्पन्न करेगी। अब सनातन भारतीय धर्मावलम्बी सेन्यासी लोगों की ओर हम अपने दृष्टि-विन्दु को दौड़ावें, तो वे तो पुरुष समाज के होते हुए भी मूँछें नहीं रखते; मुंह को, हजामत करवाते समय, हरबार, ऊपर से नीचे तक मुंड़वा लेते हैं, यह देखने में आता है। पाठको! घबराइये नहीं। इस का भी रहस्योद्घाटन हम अपने बल-भर आप के सामने किये देते हैं। देखिये, पहले तो उन का नाम 'सेन्यासी' शब्द ही कह रहा है, कि उन्हें असंग रहना चाहिए। दूसरे वे अकसर वस्तियों के बाहर बाग बगीचों या जंगलों की खुली और शुद्ध वायु में विचरण करते रहते हैं। वस्तियों से उन का सम्बन्ध यदि कभी रहा भी तो केवल टुकड़ा मांगने के समय रहता है। फिर, बताइये पाठको, [illegible] मूँछें क्यों रखवाने लगे?

यही गुप्त रहस्य भी जान पड़ता है, कि उन के धर्म ने उन्हें मूँछें मुड़वाने का पट्टा लिख दिया है। दूसरे, बालों को संवारने आदि से मन में अनेकों प्रकार की काम-वासनाओं की जागृति हो जाती है, उस से भी उन्हें काम नहीं रहता।

तब तो आप का दिल अवश्यमेव कूद रहा होगा, कि फिर जैन मुनियों ही में अकसर मुख-पत्तिका का क्यों प्रचार है। जब ये बस्ती ही में रहते हैं, तब तो उन का यह काम, मूँछों के रखने से भी तो पूरा हो सकता था। परन्तु पाठको! जिस तरह जैनेतर धर्मावलम्बी साधु संन्यासियों में मूंड मुंड-वाने की प्रथा, का, धर्म और आश्रम दोनों के रूप से, प्रचलन है, ठीक उसी प्रकार जैन मुनियों में भी 'केश लुंचन' की क्रिया का आविर्भाव हुआ है। इस नाते, जब केश लुंचन की क्रिया से मूँछें तो ये रखवाने से रहे। फिर बस्तियों के भीतर वासा कर के धर्म का प्रचार और उस की प्रगति करना भी तो इन का कर्तव्य और धर्म है ही, उस धर्म-संकट की विकट परिस्थिति में यदि मुख पत्ति ही इन के स्वास्थ्य की रक्षा का सच्चा ठेकेदार न होगा, तो और होगा ही कौन! पाठको! समझा, हमारे प्राचीन धर्म-विद् आचार्यों ने धर्म और विज्ञान का कैसा अनुपम मेल मिलाया है; कितनी गहरी छानबीन उन पूर्वजों ने की है; कौन कौन से सरलातिसरल उपायों का आविर्भाव कर के उन्होंने प्राचीन काल से प्रकृति और मन का मेल मिलाने की सचेष्टा की है।

फिर जैन-धर्म और जैनी होने के नाते तो, जैन-मुनियों के लिए आत्म-संयम रखने की और भी जिम्मेदारी आ जाती है। और संयमी मनुष्य का लक्षण मौन है। कहते हैं, कि "मौनं सर्वार्थसाधकम्।" अतः जीवन का मुकुट मौन है। किन्तु यह मौन केवल चंचल जिह्वा ही का नहीं होना चाहिए;

चंचल मन और मस्तिष्क का भी संयम इस में शामिल है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं, कि परिडतों के भाषण में बड़ी शक्ति होती है। पर उन का मौन तो इस से बलवान् और गज़ब ढहाने वाला होता है। क्यों कि महान् आत्माएं हम को मौन रह कर जो शिक्षा देती हैं, वह बोल कर कभी नहीं दे सकतीं। स्वयं प्रकृति के मौन में कितना सौन्दर्य, आनन्द और उपदेश भरा है। यही कारण के, कि "महान्तः सूक्ष्म भाषिणः" "अर्थात् बड़े लोग कम ही बोलते हैं क्या आपने कभी सोचा है, कि हमारे पूर्वज ऋषि-महात्माओं ने मौन धारण कर के जो जो आविष्कार किये हैं; क्या किसी बकने-झकनेवाले भी संसार में कहीं और कभी ऐसा किया है? कदापि नहीं। महात्माओं के उपदेश अकसर शब्द-रहित होते हैं। मूर्ख बलबलाता है प्रलपता है। तर्क के तरकस पर चढ़ कर वाक्-चातुर्य दिखाता है। वह इसी में अपने अभिमान की इतिश्री समझता है, कि तर्क के द्वारा औरों को हरा दिया जाय। परन्तु बुद्धिमान व्यर्थ का एक शब्द भी मुंह से बाहर कभी नहीं निकालता। वह तर्क नहीं करता। उसे हार मानने ही में सन्तोष है। इसी में उसे आनन्द भी है। क्रोधित किये जाने पर भी शान्त बने रहना और मौन का साधन करना कैसी अनुपम महान् आत्मा और विशाल-हृदयता का परिचायक है? सचमुच में देखा जाय, तो पता चलता है कि शान्त पुरुष ही बलवान् होता है। अतः अनुमान और अनुभव से कहना तथा मानना पड़ेगा, कि मौन ही वास्तव में सच्ची शक्ति है। इसी से तो, विजय चाहे सांसारिक हो, या आत्मिक, वह बलवान् अर्थात् निरन्तर अभ्यास करनेवाले मौनी पुरुष ही के पल्ले में रहती है और सदा से रही है। इस लिए जिन्हें बलवान् व स्वतन्त्र बनने की एक मात्र आकांक्षा है, उन्हें मौन ही की सारमयी शक्ति का संचय करना चाहिए,

जालों की मजबूती, इत्यादि बातें यदि आप चाहते हों, तो नाक के द्वारा श्वास लेने का नियम स्वीकार करें। यह नियम तन्दुरुस्ती और इस्तकलाल को ताकत देता है, और उन्हें बढ़ा देता है। यह चित्त की स्थिरता में भंग डालनेवाले नियमों तथा विचारों को कूड़ा करकट की भांति नीचे बैठा देता है।

आप जानते होंगे, कि जितने भी ऊंचे विचारवान्, बलवान्, सन्तोषी और अपनी बात के धनी पुरुष, मेरे और आप के अनुभव से, ऐतिहासिक काल में विद्वान्, राजनैतिक, धार्मिक, शूर-वीर और व्यापारी पैदा हुए और उन्नत बने हैं, वे केवल सन्तोष से, खामोशी अख्तियार करने से बने हैं। अतः आप भी मुंह को हमेशा बन्द रक्खो। सिर्फ उसी समय उसे खोलो, जब कि आप कुछ खाना चाहते हों, या दांतों को साफ करना हो, अथवा किसी से आप कुछ बात चीत करना चाहते हों। परन्तु उसे उस समय कभी न खोलो, जब कि आप उस के अन्दर से कोई हृदय को धड़कन उत्पन्न करनेवाली बात बोलना चाहें, तथा जिस के कारण आप की तबियत पर रंज आवे। मुंह को खोल कर रखने में कई सूरतें बदतरी की हैं, लेकिन यह कायमुल मिज़ाज़ी करार दिल में हो, तो सफलता की पहली सीढ़ी दिल के करार के साथ ज़बान का रोकना या खामोश रहना है।

वैद्यक-विधान से भी मुंह को बन्द रखना चाहिए। मुंह के बन्द रखने से दिमाग में रोशनी और शारीरिक तन्दुरुस्ती बढ़ जाती है। जिन्दगी आराम से गुज़रने लगती है। यदि आप इन सब बातों से और भी अधिक चाहते हैं, तो विश्वास-बल अर्थात् ख़याल का जमाना, सन्तोष और इस्तकलाल दिलेरी तथा दिल को कायम रखने को कभी हाथ से न निकलने दें।

यह चित्र राजा परदेशी को जैन धर्म का प्रति-
बोध कराने वाले श्री केशी स्वामी जी और नृप
आदि का केवल [illegible] के लिये दिया गया है।

* चित्र परिचय के लिये है *

यह चित्र राजा परदेशी को जैन धर्म का प्रतिबोध कराने वाले श्री केशी स्वामी जी और नृप आदि का केवल परिचय के लिये दिया

जालों की मजबूती, इत्यादि बातें यदि आप चाहते हों, तो नाक के द्वारा श्वास लेने का नियम स्वीकार करें। यह नियम तन्दुरुस्ती और इस्तकलाल को ताकत देता है, और उसे बढ़ा देता है। यह चित्त की स्थिरता में भंग डालनेवाले नियमों तथा विचारों को कूड़ा करकट की भांति नीचे फैंक देता है।

आप जानते होंगे, कि जितने भी ऊंचे विचारवान, बलवान, सन्तोषी और अपनी बात के धनी पुरुष, मेरे और आप के अनुभव से, ऐतिहासिक काल में विद्वान, राजनैतिक, धार्मिक, शूर-वीर और व्यापारी पैदा हुए और उन्नत बने हैं, वे केवल सन्तोष से, खामोशी अख्तियार करने से बने हैं। अतः आप भी मुंह को हमेशा बन्द रक्खो। सिर्फ उसी समय उसे खोलो, जब कि आप कुछ खाना चाहते हों, या दांतों को साफ करना हो, अथवा किसी से आप कुछ बात चीत करना चाहते हों। परन्तु उसे उस समय कभी न खोलें, जब कि आप उस के अन्दर से कोई हृदय को धड़कन उत्पन्न करनेवाली बात बोलना चाहें, तथा जिस के कारण आप की तबियत पर रंज आवे। मुंह को खोल कर रखने में कई सूरतें बहतरी की हैं, लेकिन यह कायमुल मिज़ाजी करार दिल में हो, तो सफलता की पहली सीढ़ी दिल के करार के साथ ज़बान का रोकना या खामोश रहना है।

वैद्यक-विधान से भी मुंह को बन्द रखना चाहिए। मुंह के बन्द रखने से दिमाग में रोशनी और शारीरिक तन्दुरुस्ती बढ़ जाती है। जिन्दगी आराम से गुज़रने लगती है। यदि आप इन सब बातों से और भी अधिक चाहते हैं, तो विश्वास-बल अर्थात् ख़याल का जमाना, सन्तोष और इस्तकलाल दिलेरी तथा दिल को कायम रखने को कभी हाथ से न निकलने दें।

* चित्र परिचय के लिये है *

यह चित्र राजा परदेशी को जैन धर्म का प्रतिबोध कराने वाले श्री केशी स्वामी जी और नृप आदि का केवल परिचय के लिये दिया गया है।

अब आप को इस ताकत के पढ़ाने में कुछ मजा और खुशी हांसिल होने लगेगी, तो सूरत या इन्सान का बोलना इस नाम को छोड़ कर दूसरे नाम से मोस्मूम हो सकता है, यानी कहलाई जा सकती है। अर्थात् परमात्मा से मिलजाना या परमात्मा कहलाना।

(२) The Religions of the wotld by John Murdock, L. L. D. 1902, Page 128:—

"The yati has to lead a life of continence; he should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying into it." अर्थात् "दुनिया के धर्म" या दुनिया की मज़हबी किताब, जो कि जॉन मरडॉक, एल्० एल्० डी० के द्वारा लिखित है, उस के १९०२ ईसवी सन् के संस्करण के पृष्ठ १२८ पर यों लिखा है—

"यति लोग अपनी ज़िन्दगी को निहायत मुस्तीकल मिजाजी से बसर करते हैं और वे अपने मुंह पर एक पतला कपड़ा बांधे रखते हैं, जो कि छोटे छोटे कीड़े वगैरह को शरीर के अन्दर जाने से रोक देता है।"

[3] CHAMBER'S ENCYCLOPAEDIA VOLUME 6th LONDON 1906, PAGE268:—

"The yati to lead the life of abstinence and continence, he should wear a thin cloth over his mouth.........sit". अर्थात् चेम्बर्स एनसाइक्लोपेडिया, लंदन खंड ६, पृष्ठ २६८, सन् १९०६ के संस्करण में यति लोगों के सम्बन्ध में यों लिखा है, कि यति लोग अपनी जिन्दगी निहायत सब्र और इस्तकलाल के साथ बसर करते हैं और एक पतला कपड़ा मुंहपर बांधे रहते हैं, तथा एकान्त में बैठे रहते हैं।

(४)—Mr. A. F. Rudolf hoernle Ph. D. Tubingen, in his English translation of Upasagadasang Volume 2 nd. page 51, note no 144, writes;—

"Text muhapatti, sanskrit mukha Patri. 'Lit, a leaf for the mouth,' a small piece of cloth suspended over the mouth to protect it against the entrance of any living thing."

अर्थात् मिस्टर ए० एफ० रुडोल्फ होर्नले पी० एच० डी० ट्युबिनजैन ने, जो श्री उपासक दशांगजी सूत्र का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है, उस पुस्तक के पृष्ठ ५१, नोट नम्बर १४४ में वे यों लिखते हैं:—

"मुखपत्ति, जिसको संस्कृत में "मुख-पत्रि" अर्थात् मुख का ढकन, जिससे उड़ने वाले सूक्ष्म जीव मुख के अन्दर प्रवेश न कर सकें, इसलिए छोटासा कपड़ा मुख पर बांधते हैं, वह मुख पत्ति कहलाता है।

[५] आज के संसार की राजनीति के सब से बड़े महात्मा, गांधी की राय पर भी पाठक जरा ध्यान देने की कृपा करें। वे अपने " आरोग्य-दिग्दर्शन " नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १२५२ पर हवा के सम्बन्ध में यों लिखते हैं, कि " हमारी कुटेवों से हवा कैसे खराब होती है, और उसे खराब होने से कैसे बचाया जा सकता है, यह बात तो हम जान चुके। अब हम इस बात का विचार करते हैं, कि हवा ली कैसे जावे। "

" हम पहले प्रकरण में लिख आये हैं, कि हवा लेने का मार्ग नाक है, मुंह नहीं। इतने पर भी बहुत ही कम ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें श्वांस लेना आता हो। बहुत से लोग मुंह से श्वांस लेते हुए भी देखे जाते हैं। यह टेव नुकसान करती है। बहुत ठंडी हवा जो मुंह से ली जाय, तो प्रायः सरदी हो

जाती है, स्वर बैठ जाता है हवा के साथ धूल के कण श्वांस लेने वाले के फेफड़ों में घुस जाते हैं और फेफड़ों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। इस का प्रत्यक्ष प्रभाव विलायत के शहरों में तुरन्त पड़ता है। वहां पर बहुत कल कारखानों के कारण नवम्बर मास में बहुत ही फॉग्—पीली धूमस होती है। उस में बारीक बारीक काले, धूले के कण होते हैं। जो मनुष्य इस धूल के कण-भरी हवा को मुंह से लेते है, उन के थूंक में यह देखने को आती है। ऐसा अनर्थ न होने के लिए बहुतसी स्त्रियां, जिन्हें नाक से श्वांस लेने की आदत नहीं होती, चहरे पर जाली बांधे रहती हैं। यह जाली चलनी का काम देती है। इस में हो कर जो हवा जाती है, वह साफ जाती है। इस जाली को काम में आये बाद देखा जाय, तो उस में धूल के कण मिलते हैं। ऐसी ही चलनी परमात्मा ने हमारे नाक में रक्खी है। नाक से ली हुई हवा गरम हो कर भीतर उतरती है। इस बात को ध्यान में रख कर प्रत्येक मनुष्य को नाक के द्वारा ही हवा लेनी सीखना चाहिये। यह कुछ मुश्किल नहीं है। जिन्हें मुंह खुला रखने की आदत पड़ गई हो, उन्हें मुंह पर पट्टी बांध कर रात में सोना चाहिए। इस से लाचार उन्हें नाक से ही श्वांस लेना पड़ेगा।

वैद्यक की राय से भी आरोग्यता के लिए भी मुख बांधना अच्छा माना है।

[६] अब हम जैन-सिद्धान्तों की दृष्टि से विचार करेंगे, कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिये, मुख पर मुंह-पत्ति का बांधना कितनास्वास्थ्य प्रद और हितकर है। देखियेः—

A light of jain principles to the public health:-th

principle of

over the n

that are present in the atmosphere; but as regards the medical point of view the covering over the mouth is also to protect ourselves from many diseases which are due to impurities of air.

(1) Effects of dust and solid impurities:—

Dust consists principally of mineral particles of formed or unformed organic matter of animal or vegetable origin, ie: Epithelia, fibers of wool or cotton or particles of animal or vegetable tissues, the effects depend on the amount inhaled and on the physical conditions of the particles, whether sharp-pointed or rough etc, they always injure health and the principal affections arising therefrom are cattarrh, Bronchitis, Fibroid, pneumonia, Asthma and Emphysema. The most important symptoms of lung diseases produced by inhalation of dust are Dyspnea and Expetoration.

(2) Effects of suspended impurities:—

Workers in rags and wool suffer similarly from dust. Dust from fleeces of wool has caused Anthrax. Mill-stone cutters, stone-masons, pearl-cutters, sand-paper makers. Knife-grinders, millers, hair-dressers, miners, furdyers, weavers etc, all suffer from diseases of lungs caused by the inhalation of dust and other suspended matters. Brass-founders inhale fumes of oxide of zinc and suffer from diarrhea, cramp etc Match-makers

inhale fumes of phosphorus and suffer from necrosis of the lower jaw. Besides these, infective matter from diseases like Typhoid fever, Measles, Small-pox, tuberculosis, etc. are dissimi-nated through the air probably always in the form of dust.

(3.) Effects of gases and valatile effluvia:--

(a) Hydrochloric acid vapour causes irritation of lungs and diseases of eye.

(b) carbon disulphide vapours cause headache muscular pain and depression of the nervous system.

(c) Ammonia causing irritation of conjuntiva.

(d) carburatted Hydrogan causing headache, Vomiting, Convul-sions etc. when inhaled in large quantity.

(e) Carbon monoxide imparts a cherry red colour to the blood, and by interfering with oxygenation; may cause diarrhea, headache, nausea muscular and nervous depression.

(f) Effluvia from Brick-fields, effluvia from offensive trade, tanneries fat and tallow factories gut scraping, bone-boiling, paper-making, etc. Effects of gas from sewers and house-drains are diarrhea, gastro intestinal effects, sure throat, diphtheria, aneamia and constant ill-health. Diseases like cholera, enteric fever, erysipelas measles, scarlet fever, [illegible] gravated by sewer

(4) Effects from decomposing organic carcases cause out-breaks of diarrhea and dysentery.

Therfore, gentlemen, pure air is absolutely necessary for healthy life, and perfect health can only be maintained, when in addition to other requirements, there is an abundant supply of pure air, Every one is aware that while starvation kills after days, deprivation of air kills in a few mintes Health and disease are in direct proportion to the purity or other-wise of air health being largely due to impurities of the air. Hence to apply M-u-h a p-a-t-t-i over the mouth is taught by three great authorities, i-e (1) Nature, (2) jain-principles, and (3) medical view

(1) Nature teaches human beings to avoid themselves from the directk attack of diseases, in for example, whenever we pass by the side of discomposing carcas, at-once our brain orders our hand to search out for a hand kerchief and to apply over the mouth and nose so that bad nuisance may not injure the heath.

(2) Jain principles teach us to apply Muhapatti is already discussed in shastras.

(3) Medical view teaches us to avoid from all the diseases, which can be acquired from air nd dust is already discussed above.

Some of my friends will agree that why Muhapatti should not be applied to nose, because nose is an organ of respiration. The reply is that nature has furnished the nose with hair which are the guard of foreign-body from the out-side."

अर्थात् जैन-सिद्धान्तों की दृष्टि से स्वास्थ्य-रक्षा पर विचार जो यहां किया गया है, वह यों है, कि मुंहपत्ति धारण करने का अर्थात् मुंह पर वस्त्र बांधने का उद्देश्य यह है, कि वायु में जो सजीव प्राणी रहते हैं, उन की रक्षा हो; और आयुर्वेद की दृष्टि से भी वायु में अनेकों प्रकार की खराबियां रहने के कारण, जो बीमारियां पैदा होती हैं, उन बीमारियों से अपने शरीर की रक्षा इस मुख वस्त्रिका के धारण करने से हो सकती है ।

(१) वायु-मिश्रित रजकण तथा अन्य ठोस परमाणुओं से होनेवाली हानियां यों हैं:—

धूल में खनिज-पदार्थों के टुकड़े व सजीव तथा वस्तु सम्बन्धी अनेकों अन्य पदार्थ रहते हैं । यथाः—पार्किथेलिया, ऊन व रूई के रेशे व सजीव प्राणियों के निर्जीव शव के टुकड़े व संचित वस्तुओं की शरीर सम्बन्धी नसें, आंतें और हड्डियों के टुकड़े, आदि ।

इन सब खराबियों का असर श्वासोच्छ्वास के न्यूनाधिक परिमाण पर व इन वस्तुओं की प्राकृतिक दशा पर निर्भर रहता है । अर्थात् ये वस्तुयें तीखी नोकवाली हैं या थोड़ी नोकवाली इत्यादि ।

इन से अपना स्वास्थ्य बिगड़ जाता है । इन से जो मुख्य मुख्य बीमारियां पैदा होती हैं वे ये हैं—कैटरा, ब्रोंकाइटिस, फिथ्रॉइट्ट, निमोनिया [illegible]म्फिसिमा, आदि ।

रेणु मिश्रित वायु के सेवन से फेफड़े की बीमारियों के खास लक्षण (१) डिस्प्निया और (२) एक्स्‌ पेक्टेरेशन हैं।'

(२) वायु के आश्रित रहनेवाली अन्य खराबियों का असर

रज से हानि उठाने की ठीक यही बात, चिथड़ों व ऊन का काम करनेवालों के लिए लागू पड़ती है। ऊन के गुच्छों की धूल से एन्थ्रेक्स पैदा होजाता है। यही टांचनवाले व सिलावट, मोती काटनेवाले, रेजमाल कागज को बनानेवाले, चाकू सुधारनेवाले, चक्की चलाने वाले, बाल काटनेवाले, खान खोदनेवाले, ऊन रंगनेवाले, कपड़ा बुननेवाले, आदि सब के सब, रज-मिश्रित अन्य परमाणुओं से युक्त वायु के सेवन करते रहने से फेफड़े सम्बन्धी अनेकों प्रकार की बीमारियों से पीड़ित रहते हैं। उदाहरणार्थ—पीतल के बर्तन बनानेवाले, जस्त (zinc) ऑक्साइड् (oxide) के कणों का श्वास लेते हैं। और उन्हें डायरिया या क्रेम्प (cramp) हो जाया करता है। दीयासलाई बनानेवाले फासफोरस (गन्धक) की चिनगारियों की श्वांस लेते हैं। यही कारण है कि उन के जबड़ों में नेक्रोसिस हो जाता है। इन के सिवाय, छूत के रोग, जैसे, टाइफाइड् ज्वर, मल, माता, ट्यूबर केलिस, इत्यादि, जो हवा में हमेशा रज रूप में वितरित होते हैं, भी लागू हो जाते हैं।

(३) हवा में मिली हुई गन्दगी व अन्य मैली हवाओं का असर।

अ—हाइड्रो-क्लोरिक-एसिड् की भाप फेफड़ों को बिगाड़ देती है और तरह तरह के नेत्र-रोग की उत्पादक है।

ब—कारबन-डाओक्साइड् (carbon Dioxide) की भाप मस्तिष्क व नसों में दर्द और रगों में शिथिलता को पैदा करती है।

स—एमोनिया, कन्जक्टाइव्हा में विकार उत्पन्न करता है।

ह—कारब्यूरेटेड हाइड्रोजन मस्तिष्क, वमन, ऐंठन, इत्यादि (जब अधिक परिमाण में सूंघ ली जाय, तब) पैदा करती है।

द—कारबन-मोनोक्साइड, खून का रंग हलका लाल कर देती है। और ऑक्सीजनेशन के मिल जाने से यही डाइरिया, मस्तिष्क नोसिस, (उल्टी) और नसों तथा रगों में शिथिलता पैदा करती है।

फ—ईंटों के अवाड़े की हवा, दुर्गन्धित पदार्थों के व्यापार की हवा, चर्बी की फैक्टरियों की हवा, आंतें साफ करने की हवा, हड्डियों को उबालने की हवा, कागज बनाने की हवा, और नालों व गटर की हवा से डाइरिया, आंतों में दुर्विकार, कोढ़, डिफ्थीरिया, एनिमिया और सदा सर्वदा अस्वस्थ रहने आदि आदि अनेकों प्रकार के रोग हो जाते हैं। परनालों व गटरों की हवा से हैजा, पाक्षिक ज्वर, परिस, पिलस, मल, लाल बुखार आदि आदि बीमारियां बढ़ जाया करती हैं।

(४) प्राणियों के सड़ते हुए शरीरों की हवा से डाइरिया या डिसेन्ट्री पैदा हो जाती है।

अतः महानुभावो! स्वास्थ्य-रक्षा के लिए शुद्ध व स्वच्छ वायु अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य अच्छा तब ही रह सकता है, जब अन्य पदार्थों के सिवाय शुद्ध हवा का परिपूर्ण भाग विद्यमान रहता है। इस बात को प्रायः सभी जानते और मानते हैं कि भूखा मनुष्य कई दिनों तक जिन्दा रह सकता है, परन्तु हवा से वञ्चित रहनेवाला चन्द मिनिटों ही के बाद यहां से चल बसता है।

स्वास्थ्य का अच्छापन, हवा की शुद्धता पर उतना ही अधिक निर्भर है, जितना कि अधिकाधिक गन्दगियों से बीमारियों का बढ़ना। अर्थात् वायु में जितनी ही अधिक खराबियां रहेंगी

हैं, उतनी ही अधिक बीमारियां भी उस हवा से पैदा होती हैं। अतः मुंह पर वस्त्र बांधना इन तीन सिद्धान्तों, अर्थात् (१) प्रकृति, (२) जैन-सिद्धान्त और (३) वैद्यक-विचार, से पुष्ट हो जाता है।

१—प्रकृति, प्राणी मात्र को बीमारियों से रक्षा करना तथा बचना सिखाती है। जैसे, यदि हम कहीं किसी सड़ी हुई लाश के पास से हो कर गुज़रें, तो एकदम अपना दिमाग अपने हाथों को जेब में से रुमाल निकालने के लिए, तथा उसे नाक के आड़ा लगाने या रखने के लिए प्रेरित करता है। ताकि दुर्गन्धिक हवा स्वास्थ्य को न बिगाड़ सके।

२—मुंहपत्ति को धारण करने या मुख पर बांधने के विषय में, जैन शास्त्रों में विशदता-पूर्वक व्याख्या तथा पुष्टि की गई है।

और ३—वैद्यक शास्त्र भी हमें यही शिक्षा देते हैं, कि उपर्युक्त वायु-मिश्रित रजकण तथा दुर्गन्ध से जो बीमारियां पैदा होती हैं, उन से अपने आप को बचाओ।

यहां कतिपय महाशय कथंचित् यह तर्क कर बैठें, कि तब तो मुंहपत्ति को नाक पर ही क्यों न लगा लेनी चाहिये। क्योंकि, नाक भी तो वायु-सेवन का एक द्वार है। इस के उत्तर में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा, कि प्रकृति ने इस के लिए नाक में बालों का निर्माण किया है। जिनसे बाहर की खराबियां सब ही सब बाहर की रुकी रह जाती हैं।

उपसंहारः—इन प्रमाणों के अतिरिक्त, हम अपने पाठकों के आगे, आधुनिक काल के बड़े बड़े कवि-कोविदों और धुरन्धर विद्वानों के बीसियों प्रमाण पेश कर सकते हैं, जिन में उन्होंने मुख-वस्त्रिका तथा मुख-वस्त्रिका का मुंह पर धारण करने वालों की हर तरह प्राचीनता सिद्ध करते हुए, अपने

उन के वल-भर किया; बुद्धि और विवेक से उन्होंने, उन के गुरु—गौरव का वर्णन किया है। जो कृपालु पाठक इन सम्पूर्ण प्रमाणों का, जो आधुनिक कालीन है, एक ही स्थान पर, एक ही समय में मजा लूटना चाहें, वे हमारी "श्री समस्या-पूर्ति—सुमन—माला" को मंगाकर एक बार अवश्य अवलोकन करें ताकि उन्हें हमारे कथन की सचाई का वास्तविक अनुभव हो सके। यही नहीं, पर हमें तो पूर्ण विश्वास और आशा है कि उस के मनन-पूर्वक पठन-पाठन से कई कदाग्रही लोगों का कदाग्रह भी विना अन्य किसी प्रयास और प्रयत्न के कोसों दूर भाग जायगा। उन की सनातन जैन धर्म के प्रति प्रगाढ़ प्रीति बढ़ेगी। भगवान् उन की आत्मा को बल प्रदान करें; जिस से वे अपने सनातन जैन धर्म की छत्रच्छाया के तले, ज्ञान के दिव्य आलोक में, स्वात्म-कल्याण के स्वाभाविक और सर्वोत्कृष्ट स्वराज्य का सदा के लिए सुखोपभोग कर सकें।

अन्त में, अब अपनी लेखनी को विश्राम देने के पहले, हम एक बार पुनः अपने पाठकों के सामने, अपनी पुस्तक के मर्म को थोड़े से शब्दों में रखने का प्रयत्न करते हैं। सज्जनों! हम इस छोटीसी पुस्तिका में, क्या जैनियों और क्या जैनेतर धर्मावलम्बी, सभी के आर्ष ग्रन्थों से मुख-वस्त्रिका की क्रमिक प्राचीनता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। हम ने बतलाया है, कि जिस प्रकार यह एक धर्म के लोगों का धार्मिक चिह्न है, ठीक उसी प्रकार; यह स्वास्थ्य-स्वर्ग का एक सुन्दर और सुदृढ़ सोपान भी है। हम ने क्या आधुनिक और क्या प्राचीन, क्या माध्यमिक और क्या ऐतिहासिक सभी कालों के प्रौढ़ प्रमाणों का उद्धरण करते हुए, अर्थात् मुख-वस्त्रिका की प्राचीनता और उस के द्वारा

व जीवन-रक्षा सम्बन्धी उपयोगिता को सिद्ध करने का सतत प्रयत्न किया है। जिस प्रकार यह प्राचीन काल के लोगों को प्यारी थी, तथा यह उन के लिए इह लौकिक और पारलौकिक स्थायी सुख के एक परवाना के रूप में थी, उस से भी और अधिक प्रशस्त रूप में यह आज के सभ्यातिसभ्य मानव समाज के महत् पुरुषों को सुख और स्वास्थ्य की देने हारी राम-बाणबूंटी है। जिस के सुन्दर शासन की धाक को सभी सभ्य देशों के विद्वानों ने एक स्वर और एक रूप से माना है। प्यारे पाठको! यही आप के सनातन जैन धर्म की ध्वजा, मुख-वस्त्रिका आप का सदा सर्वदा और सर्वत्र मंगल साधन करे।

॥ ॐ ॥ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

व जीवन-रक्षा सम्बन्धी उपयोगिता को सिद्ध करने का सतत प्रयत्न किया है । जिस प्रकार यह प्राचीन काल के लोगों को प्यारी थी, तथा यह उन के लिए इह लौकिक और पार लौकिक स्थायी सुख के एक परवाना के रूप में थी, उस से भी और अधिक प्रशस्त रूप में यह आज के सभ्यातिसभ्य मानव समाज के महान् पुरुषों को सुख और स्वास्थ्य की देने हारी राम-बाणबूंटी है । जिस के सुन्दर शासन की धाक को सभी सभ्य देशों के विद्वानों ने एक स्वर और एक रूप से माना है । प्यारे पाठको ! यही आप के सनातन जैन धर्म की ध्वजा, मुख-वस्त्रिका आप का सदा सर्वदा और सर्वत्र मंगल साधन करे ।

॥ ॐ ॥ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!